वे क्रान्ति के दिन

स्वाधीनता संग्राम के तूफ़ानी दिनों और दुनिया के
इतिहास के इस बेजोड़ आन्दोलन के बेजोड़
नेताओं की अविस्मरणीय झांकियां
स्वातन्त्र्य युद्ध के एक वीर योद्धा
श्री महावीर त्यागी ने
'वे क्रान्ति के दिन' में प्रस्तुत की हैं
स्वाधीन भारत के भूतपूर्व प्रतिरक्षा मंत्री
श्री त्यागी के ये अनूठे संस्मरण
रोचक भी हैं और विचारणीय भी
विवरणात्मक भी हैं और
ऐतिहासिक भी......

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
सस्ते मूल्य पर हिन्दी में उत्कृष्ट, मौलिक
और अनुवादित पुस्तकें प्रकाशित
करने वाली सर्वप्रथम भारतीय संस्था है

वे क्रान्ति के दिन

महावीर त्यागी

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

VE KRANTI KE DIN : MAHAVIR TYAGI : MEMOIRS

मूल्य : एक रुपया

प्रस्तावना

हमनशीं कहां जाएं, कोई ठिकाना न रहा।
या तो वह हम न रहे, या वोह जमाना न रहा ॥

लोगों का ख्याल है कि गहरी मनोकामनाओं की पूर्ति हो जाने पर मनुष्य को असीम आनन्द और सन्तुष्टि मिल जाती है; एक सीमा तक यह बात ठीक भी है, पर इसमें प्रश्न यह उठता है कि लक्ष्य की प्राप्ति के बाद क्या होगा। या तो कोई दूसरा लक्ष्य ढूंढ़ना पड़ेगा, या फिर मेरी तरह अपने नातियों के साथ आंखमिचौनी खेलकर ही जी बहलाना होगा। 'कोठी-बंगले और हलवा-पूरी' जिन किन्हीं-को प्राप्त हैं, वे धन्य हैं, पर संसार का वास्तविक आनन्द लूटने के लिए तो कोठी से बाहर निकलकर किसी गैर पर आंखें टिकानी पड़ेंगी, और अपनी हलवा-पूरी के साझीदार भी ढूंढ़ने पड़ेंगे। क्योंकि 'दाद' देने वाले न मिले तो ग़ज़ल सुनाना बेकार है।

पं० मोतीलाल नेहरू को अपने हाथ से तरकारी (सब्जी) पकाने और विदेष अनुपात की चाय बनाने का शौक था। सन् १९२१ की बात है कि जब वे लखनऊ जेल की 'दिवानी बैरक' में बन्द थे, मैं कभी-कभी उनकी सब्जी आदि छील दिया करता था। एक दिन 'दम-आलू' बनाए बैठे थे, मैं किसी दूसरी बैरक में गप-शप के लिए चला गया, लौटने पर मैंने पूछा, "सब्जी ठण्डी हो रही है भाई जी, आपने खाई क्यों नहीं।" बोले, "इतने शौक से बनाई थी, तुम, हैंचो, मटर-गश्ती को चले गए, क्या मैं अकेला खाऊं?" सुख

का असली मज़ा साझेदारी में है। यही नियम दुःख पर भी लागू है। जैसे हंसने के लिए किसी साथी का होना अनिवार्य है, इसी तरह रोने का मज़ा भी केवल अपनों ही के बीच में है।

पर चूंकि आजकल का संसार व्यापार-प्रिय हो चला है इसलिए प्रेम भी इस युग में व्यवसाय की वस्तु बन गई है। जान पहचानकर करते हैं प्यार, और जैसे घी में लोग घोलते हैं डालडा इसी तरह प्यार में मिलाते हैं खुशामद। और खुद तो किसीको दिल से प्यार करते नहीं, दूसरों से चाहते हैं कि वह आशिक हो जाए हमपर।

यह संस्मरण साहित्यिक भाषा में न लिखकर प्यार की भाषा में लिखे हैं, क्योंकि साहित्यकार का दुनिया आदर तो करती है पर प्यार नहीं करती। आदर दिमाग से होता है, और प्यार दिल से। प्यार की भाषा दलील और व्याकरण के बन्धनों से मुक्त होने के कारण सीधे दिल पर वार करती है। मैंने इन संस्मरणों को छपवाने की स्वीकृति इसी आशा से दी है कि शायद पाठकों में से ही कुछ प्यार करने वाले, मेरी टूटी-फूटी भाषा के कारण, मुझे मिल जाएं, तो उनके पत्रों से मेरा जी बहल जाएगा।

—महावीर त्यागी

रैन बसेरा, देहरादून

११-१२-१९६२

बापू की याद में

सन् १९४२ में जब विश्वयुद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया था, जापान भारत पर आक्रमण करने की तैयारी में था, और बिना भारत की जनता का विश्वास प्राप्त किए ब्रिटिश सरकार ने भारत को भी युद्ध में घसीट लिया था, तो महात्मा जी ने कहा था कि "ब्रिटिश सरकार की नीति भारत को स्वतंत्र करने की नहीं है, भले ही कोई तीसरी शक्ति इसपर अपना स्वामित्व क्यों न कर ले।" ऐसी परिस्थिति में ८ अगस्त, सन् १९४२ को महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी थी कि "भारत छोड़ो"। तुरन्त ही सारे कांग्रेसी नेता नजरबन्द कर लिए गए और महात्मा गांधी को 'आगाखां पैलेस' में बन्द कर दिया गया। उनके साथ 'बा' (स्वर्गीय कस्तूरबा गांधी) और बापू के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई, कु० सुशीला नायर भी नजरबन्द कर लिए गए। हफ्ते-भर के अन्दर महादेव देसाई का स्वर्गवास हो गया और चूंकि पूरे भारतवर्ष में पकड़-धकड़ शुरू हो चुकी थी, हजारों कांग्रेसी जेल में डाल दिए गए। महादेव देसाई की जगह श्री प्यारेलाल जी को आगाखां पैलेस भेज दिया गया। योरोप में जर्मनी का युद्ध और भारत में स्वतन्त्रता-आन्दोलन साथ-साथ जोरों से चल रहे थे कि सन् १९४३-४४ में हमारे देश में भयंकर अकाल पड़ गया और केवल बंगाल में लगभग ३० लाख स्त्री-पुरुष और बच्चे भूख से मर गए। कलकत्ते की गलियों में चारों

ओर लाशें ही लाशें पड़ी थी। हम जेलों में सड़ रहे थे और चिन्तित थे कि हमारे बाल-बच्चों के ऊपर क्या गुजर रही होगी। एक दिन खबर मिली कि बापू ने २१ दिन का अनशन कर दिया है। महात्मा गांधी आगाखां पैलेस में मच्छरों का शिकार बने पड़े थे। हम लोगों ने अपनी-अपनी बैरकों में बापू की दीर्घायु के लिए यज्ञ और प्रार्थनाएं शुरू कर दीं। उपवास तो पूरा हो गया पर उसके बाद 'बा' के स्वर्गवास हो जाने की खबर मिली। फिर बापू सख्त बीमार पड़ गए। देश-भर में बापू को मुक्त कराने का आन्दोलन चल पड़ा। यहां तक कि केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी और मुस्लिम लीगी सदस्यों ने सर्वसम्मति से १९४४ का बजट अस्वीकार कर दिया। आगाखां पैलेस के चारों ओर कांटेदार तार लगे थे और सैकड़ों पुलिस वाले दिन-रात बंगले के चारों ओर पहरा देते थे। बापू जब बहुत बीमार हुए तो डाक्टर गिल्डर भी उनकी देख-रेख के लिए आगाखां पैलेस में भेज दिए गए। एक रात को तो बीमारी ने भयंकर रूप धारण कर लिया और बचने की आशा न रही। ब्रिटिश सरकार ने उनके दाहकरण के लिए बहुत-सा चन्दन मंगाकर तैयार रख लिया था और ब्रिटिश विदेश मंत्री श्री एन्थनी एडन ने अपने तमाम दूतों को चिट्ठियां भेज दी थीं कि "वे मिस्टर गांधी की मृत्यु के अवसर पर जो शोक-सन्देश दें उनमें ऐसे शब्दों का प्रयोग न करें कि जिनसे गांधी के नैतिक स्तर को तनिक भी ठेस पहुंचे, आपको कहना चाहिए कि उनको अपने आध्यात्मिक आदर्शों में अटूट विश्वास था। और आपको इस बात पर शोक प्रकट करना चाहिए कि उनकी अद्वितीय प्रतिभा और प्रभाव से मित्रराष्ट्र विशेषकर चीन और भारत कोई लाभ न उठा सके।"

ऐसी भंयकर स्थिति में भी बापू को मरने की चिन्ता कम थी। उन्होने कई बार सरकार से अनुरोध किया कि उन्हें किसी साधारण जेल में अन्य राजनैतिक बन्दियों की तरह क्यों नहीं रखा जाता।

बापू ने कहा था कि:

"मुझपर जो यह फिजूलखर्ची की जा रही है यह तुम्हारा पैसा तो नहीं है, यह तो मेरा और मेरी गरीब जनता का पैसा है। मेरे चारों ओर इतनी फौज क्यों डाली, क्या तुम्हें डर है कि मैं चोरी से निकलकर भाग जाऊंगा?"

इसी तरह एक दिन जब बापू सेवाग्राम में टहल रहे थे कि रास्ते में दो इंच लम्बा एक पूनी (चर्खा कातने की रुई) का टुकड़ा पड़ा दिखाई दे गया, बापू ने उसे उठा लिया और आश्रमवासियों को कहा कि "देश की सम्पत्ति को इस लापरवाही से नहीं फेंकना चाहिए।"

बापू की बात को छोड़िए। अब से सैंकड़ों वर्ष पहले मुगल राज्य के सम्राट औरंगजेब ने अपने मरने से पहले जो वसीयत की थी उसे पढ़िए। उसने कहा था कि मेरे कफन और दफन पर सरकारी खजाने की एक कौड़ी भी खर्च न की जाए, जो ४=) (चार रुपये दो आने) मैंने टोपियां सिलकर कमाए हैं, वह महलदार पर जमा हैं उनसे गज्जी का कफ़न खरीदकर मुझे लपेट देना और ३०५) जो मैंने क़ुरानशरीफ लिखकर कमाए हैं वह फकीरों को बांट देना, क्योंकि इस्लाम मत के अनुसार क़ुरान की कमाई का इस्तेमाल हराम है।

सत्याग्रह की धर्म-परीक्षा

सन् १६४७ मे भारत के बटवारे के समय जब पाकिस्तान और भारत में साम्प्रदायिक झगड़े और बलवे होने लगे तो महात्मा गांधी को महान आत्मिक कष्ट हुआ। उनकी व्याकुलता का वर्णन करना असंभव है। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों के भी हाथ-पैर फूल गए। हमें ऐसा लगने लगा जैसे करोड़ों परिवारों की खून से सींची हुई इस स्वराज्य की आशा-लता पर पाला पड़ गया हो। मैं उन दिनों केन्द्रीय विधान-सभा और प्रान्तीय असेम्बली दोनों का मेम्बर था। एक दिन प्रातः लखनऊ के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट से पुलिस कान्स्टेबल की वर्दी मंगाकर पहन ली और डंडा-पेटी बांधकर मुख्यमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पन्त के बंगले पर चला गया। दरवाजे पर एक पुलिस इंस्पेक्टर खड़े थे, उन्हें सलाम फटकारते हुए सीधा पन्त जी के कमरे में घुस गया। पन्त जी को आश्चर्य हुआ कि पुलिस का साधारण सिपाही बिना आज्ञा के अन्दर कैसे घुस आया। सलाम लेने के बाद उन्होंने जोर से पूछा कि तुम अन्दर कैसे आए? मैंने कहा कि मेरा नाम महावीर त्यागी है, मैं अब कांस्टेबल हो गया हूं और आपका आशीर्वाद लेने आया हूं। फिर वो हंसकर खड़े हो गए और कहने लगे कि तुम्हें यह कैसा खब्त सूझा है। मैंने कहा कि जगह-जगह हिन्दू-मुस्लिम गे हो रहे हैं और न तो कांग्रेस वाले ही सामने आते हैं और न

पुलिस ही कुछ कर रही है, इसलिए मैंने फैसला किया है कि २५० कांग्रेस वालों का एक स्वयंसेवक पुलिस-दल भर्ती करके देश में शान्ति स्थापना का प्रयत्न करूं। उन्हें यह योजना पसन्द आई और तुरन्त ही सरकारी गजट में एक विज्ञप्ति निकाल दी कि इस दल का नाम 'त्यागी पुलिस' होगा और इस दल के सिपाहियों को कोई वेतन तो नही मिलेगा पर इन्हें पुलिस के पूरे अधिकार प्राप्त होंगे और वर्दी, पेटी, राइफल और राशन (खाद्य सामग्री) दी जाएगी। पुलिस लाइन मेरठ में हमारा हैडक्वार्टर बनाकर ट्रेनिंग का प्रबन्ध सरकार की ओर से कर दिया गया और इस दल को राइफल भी दे दी गई। महीने-भर की ट्रेनिंग के बाद मैं मयवर्दी के महात्मा गांधी के पास आशीर्वाद के लिए पहुंचा, वे बिरला हाउस दिल्ली में ठहरे हुए थे। मुझे देखते ही खिलखिलाकर हंस पड़े। मैंने सलाम झाड़ा और कुर्सी पर बैठ गया, वे चारपाई पर लेटे हुए थे। बैठते ही मैंने कहा, "आशीर्वाद के लिए आया हूं, बापू।" गांधी जी ने कहा, "क्या तू मुझे नाच नचाएगा?" मैंने कहा, "नहीं।" बापू बोले, "आशीर्वाद नहीं मिल सकता।" मैं समझा कि खद्दर की वर्दी न होने के कारण बापू रुष्ट हैं। मैं बहुत हताश हुआ और खड़े होकर बोला, "यदि आशीर्वाद नहीं दे सकते तो आप मेरा खुला विरोध करके देख लें, मैं और मेरे साथियों ने मैदान में कदम रख दिया है, अब पीछे नहीं हट सकते।" यह कहकर मैं चलने लगा तो बापू बोले, "तू समझा नहीं, मुझे आशीर्वाद में आपत्ति नहीं है, तू पहले वायदा कर कि मुझे नाच नचा देगा।" दिमाग तो ठंडा पड़ा पर सचमुच मैं नाच नचाने के अर्थ नहीं समझ सका। बचपन में जब खाना खाने से भागता था तो मेरी दादी तंग आकर कहती थी कि "घरबसा.

घटों नाच नचाता है।" मैंने बापू से पूछा कि नाच नचाने से आपका क्या तात्पर्य है तो बोले, "जब मैं अखबार में पढ़ूंगा कि मुसलमानों की जान बचाते हुए त्यागी को किसीने छुरा मार दिया, और उसकी लाश तो सहारनपुर के बाजार में पड़ी है तो मैं खुशी के मारे नाचूंगा; तो फिर तू मुझको वायदा कर कि मुझे नाच नचा देगा।" इतना सुनना था कि प्यार से मेरी घिग्घी बंध गई और चारपाई पर पड़े बापू के दोनों पैरों को पकड़कर मैंने वायदा कर दिया कि "भगवान मेरी सहायता करे और छुरी वाला भेज दे, तो बापू, मैं इन चरणों की शपथ लेकर कहता हूं कि अवश्य आपको नाच नचा दूंगा।" फिर क्या था, बापू बैठे हो गए और मेरे कन्धों पर हाथ रखकर दरवाजे तक मुझे छोड़ने आए। रास्ते में ठहरकर बड़े प्यार से बोले, "स्वराज्य तो मिल गया पर मेरे जीवन में सत्याग्रह धर्म की असली परीक्षा नहीं हो सकी। मैं चाहता हूं कि तुम्हारी तरह ५० या १०० आदमी अहिंसा और सत्याग्रह की परीक्षा में अपनी जान दे दें तो मेरे जीवन का उद्देश्य सफल हो जाए।" चलते समय मैंने फिर गर्दन झुका-कर कहा, "अच्छा अब तो मुझे आशीर्वाद दे दो बापू!" तो बापू बोले, "जब मैं नाचूंगा तो मेरा नाच ही तेरा (तुम्हारा) आशीर्वाद होगा।"

मैं अभागा हूं कि अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका। बापू तो शहीद हो गए पर मेरी उंगली तक न कटी। मरने को तो अब भी तैयार हूं पर अब अहिंसा और सत्याग्रह को इस 'साइंस' और 'टेक-नीक' के युग में रूढ़िवाद और दकियानूसी समझा जाने लगा है। धोती पहनना, हिन्दी बोलना, बाइसिकल या तांगे पर चलना, चर्खा चलाना, झाड़ू लगाना, टट्टी उठाना और रामनाम—सब पाखंड कह-लाने लगे हैं, शुक्र है कि अभी खद्दर पहनने की छूट है। दर्जों की पढ़-

दौड़ में बापू की बताई हुई सामाजिक और नैतिक वित्तियां (मूल्य) सब धूल में मिल गईं।

बात असल में यह है कि जब कांग्रेस स्वराज्य-प्राप्ति के आन्दोलन में लगी थी तो हर व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से जन-सेवा और देश-कल्याण के भाव से प्रेरित होता था, इसके फलस्वरूप समाज का वातावरण इतना शुद्ध हो चला था कि भ्रष्टाचारी और समाज-विरोधी व्यक्तियों को लोक-लाज के भय से अपने मुंह छिपाने पड़ते थे। महात्मा गांधी ने १५ अगस्त, १९४७ से पहिले ही भांप लिया था कि हवा का रुख किधर को है। अपने अन्तिम समय में गांधी जी बहुत दुखी थे। गोडसे ने गोली चलाकर देश को तो अवश्य ही कलंकित कर दिया और भयंकर हानि भी पहुंचाई, पर गांधी जी के लिए अच्छा ही हुआ कि उन्हें ये दिन देखने न पड़े।

१४ मई, १९४७ को बापू बहुत थके हुए थे कि डाक्टर विधानचन्द्र राय उनसे मिलने आए और उनके स्वास्थ्य को देखकर उनसे कहा "यदि आपको अपने लिए नहीं तो जनता की अधिक सेवा कर सकने के लिए आराम लेना क्या आपका धर्म नहीं हो जाता?" बापू बोले, "हां, यदि लोग मेरी कुछ भी सुनें और मैं लोगों के और सत्ताधीश मित्रों के लिए किसी उपयोग का हो सकूं तो जरूर ऐसा करूं। परन्तु अब मुझे नहीं लगता कि मेरा कहीं भी कोई उपयोग है। भले ही मेरी बुद्धि मन्द हो गई हो फिर भी इस संकट के काल में आराम करने की बजाय 'करना या मरना' ही पसन्द करूंगा। मेरी इच्छा काम करते-करते और राम रटन करते-करते मरने की है। मैं अपने अनेक विचारों में अकेला पड़ गया हूं फिर भी अपने अनेक मित्रों के साथ दृढ़ता से भिड़ने का साहस

ईश्वर मुझे दे रहा है।"

उन दिनों केन्द्र और सभी प्रदेशों में राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना हो चुकी थी पर हमारे मंत्रिमण्डलों का जो रहन-सहन और कार्य-प्रणाली थी उससे बापू खुश नहीं थे। लोगों की शिकायत थी कि अनेक त्याग और बलिदानों के सहारे कांग्रेस एक महान संस्था बनी है और इसका इतिहास बहुत उज्ज्वल है फिर भी शासन की सत्ता हाथ में आने से कांग्रेसी उन गुणों को खोते जा रहे हैं और पद-प्राप्ति के लिए अनुचित रूप से स्पर्द्धा कर रहे हैं। २१ मई को बापू ने प्रार्थना के समय कहा था :

"स्वतंत्रता का जो अमूल्य रत्न हमारे हाथ में आ रहा है मुझे डर है कि हम उसे खो बैठेंगे। स्वराज्य लेने का पाठ तो हमें मिला परन्तु उसे टिकाए रखने का पाठ हमने नहीं सीखा। अंग्रेजों की तरह बन्दूकों के जोर पर हमारी राज्य-सत्ता नहीं चलेगी। अनेक प्रकार के त्याग और तपश्चर्या के द्वारा कांग्रेस ने जनता का विश्वास सम्पादन किया है परन्तु यदि आज कांग्रेस वाले जनता को धोका देंगे और सेवा करने की बजाय उसके मालिक बन जाएंगे या मालिकों की तरह व्यवहार करेंगे तो मैं शायद जीऊं या न जीऊं, परन्तु इतने वर्षों के अनुभव के आधार पर यह चेतावनी देने की हिम्मत करूंगा कि देश में बलवा मच जाएगा, सफेद टोपी वालों को लोग चुन-चुनकर मारेंगे और कोई तीसरी सत्ता उसका लाभ उठाएगी।"

मंत्रियों का कर्तव्य

१६ अप्रैल, १६४७ को जब बिहार का मंत्रिमण्डल बापू से मिलने के लिए पटना में आया तो बापू ने स्वतंत्र भारत में मंत्रि

मण्डल अथवा गवर्नरों को कैसे रहना चाहिए इसपर निम्नलिखित विचार प्रकट किए थे :

(१) मंत्रियों और गवर्नरों को यथासंभव स्वदेशी वस्तुएं ही काम में लानी चाहिएं। उनको और उनके कुटुम्बियों को खादी पहनना चाहिए और अहिंसा में विश्वास रखना चाहिए।

(२) उन्हें दोनों लिपियां सीखनी चाहिएं और जहां तक हो सके आपस की बातचीत में भी अंग्रेजी का व्यवहार नहीं करना चाहिए। सार्वजनिक रूप में हिन्दुस्तानी और अपने प्रान्त की भाषा का ही उपयोग करना चाहिए।

(३) सत्ताधारी की दृष्टि में अपना सगा बेटा, सगा भाई, एक सामान्य व्यक्ति, कारीगर या मजदूर—सब एक-से होने चाहिए।

(४) व्यक्तिगत जीवन इतना सादा होना चाहिए कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें हर रोज देश के लिए एक घण्टा शारीरिक श्रम करना चाहिए। या तो चर्खा कातें या अपने हाथ से घर के आसपास अन्न या साग-सब्जी लगानी चाहिए।

(५) मोटर और बंगला तो होना ही नहीं चाहिए। आवश्यकता के अनुसार साधारण मकान काम में लेना चाहिए। हां, यदि दूर जाना हो या किसी खास काम से जाना हो तो जरूर मोटर काम में ले सकते हैं। लेकिन मोटर का उपयोग मर्यादित होना चाहिए। मोटर की थोड़ी-बहुत जरूरत तो कभी न कभी रहेगी ही।

(६) मंत्रियों के मकान पास-पास हों जिससे वे एक-दूसरे के विचारों में, कुटम्बों में और काम-काजों में ओत-प्रोत हो सकें।

(७) घर के दूसरे भाई-बहिन घर में हाथ से ही काम करें। नौकरों का उपयोग कम से कम होना चाहिए।

(८) सोफा सेट, अलमारिया या चमकीली कुर्सियां बैठने के लिए नही रखनी चाहिए।

(९) मन्त्रियों को किसी प्रकार के व्यसन तो होने ही नही चाहिएं।

(१०) ऐसे सादे, सरल और आध्यात्मिक विचार रखने वाले जनता के सेवकों की जनता ही रक्षा करेगी। प्रत्येक मंत्री के बंगले के आसपास आज जो छः या इससे अधिक सिपाहियों का पहरा रहता है वह अहिंसक मंत्रिमंडल को बेहूदा लगना चाहिए। इससे बहुत खर्च बच जाएगा।

(११) लेकिन मेरे इन सब विचारों को मानता कौन है। फिर भी मुझसे कहे बिना नहीं रहा जाता क्योंकि मूक साक्षी रहने की मेरी इच्छा नहीं है।

महात्मा गांधी के उपर्युक्त विचारों को पढ़कर पाठक गण यह अनुभव करेंगे कि राष्ट्र में समाजवादी प्रणाली की स्थापना केवल कानून बनाने से नही हो सकती; उसके लिए एक सार्वजनिक आन्दोलन की आवश्यकता है। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जितनी त्याग-तपस्या की आवश्यकता थी उससे कही अधिक त्याग-तपस्या करनी होगी। आज तो स्वामित्व की भावना इतनी भयंकर रूप से फैलती चली जा रही है कि यदि इसकी रोकथाम न हो सकी तो देश नवाबी के रास्ते पर चल पड़ेगा। जो लोग समाजवाद मे विश्वास रखते हैं उनका सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वो अपने पास-पड़ोस के बच्चों के साथ अपने बच्चों जैसा और अपने नौकर-मजदूरों के साथ भाई-भतीजों जैसा व्यवहार करे। आज तो हमारा खाना बनाने वाला

भी हमारे साथ एक मेज पर बैठकर खाना नहीं खा सकता और न हमारे कमरे की कुर्सी पर बैठने की हिम्मत कर सकता है। समाज में भयंकर व्यक्तिवाद फैल रहा है। प्यार और मुहब्बत भी एक व्यवसाय की वस्तु बन गई है। दोस्तियां टूट रही हैं। ईर्ष्या, द्वेष और वैर-भाव के नाते समाज के अस्तित्व को नष्ट कर रहे हैं। देहरादून के 'खुशदिल' कवि ने ठीक ही कहा है :

इस किश्तिये हयात को ले जाऊं किस तरफ़।
नजरों के सामने कोई साहिल नहीं रहा॥

जब मेरे पास पैसे न रहे

सन् १६३० के नमक सत्याग्रह-आन्दोलन की घोषणा का वाइसराय से लेकर पं० मोतीलाल नेहरू तक सब ही ने ठट्ठा उड़ाया था। सर्वसाधारण कहते थे कि पहाड़ से सिर टकराना है, भला लात के भूत कहीं बातों से मानेंगे ? नमक बनाकर अंग्रेज जैसी शक्तिशाली सरकार को उखाड़ फेंकेंगे, इसका कोई यकीन नहीं करता था। पर महात्मा गांधी के रहस्यों को समझना इतना ही कठिन था कि जितना ग्राह से गज के फन्दे छुड़ाना।

हमें आज्ञा मिली कि जहां कहीं भी खारी मिट्टी मिले उसे पानी में घोलकर मट्ठी पर चढ़ाओ और अपने जिले के कलक्टर को चुनौती देकर और ढोल पीटकर खुले आम नमक बनाओ। देहरादून जिले का पहिला जत्था चौ० बिहारीलाल के नेतृत्व में खाराखेत नामक स्थान पर पहुंचा। वहां पर एक छोटा-सा नमकीन झरना था, उसी-का पानी लेकर नमक बनाया और छोटी-छोटी कागज की पुड़ियां बनाकर गांधी का नमक १ रु०, १० रु०, २० रु० में, एक, दो, तीन, गांधी का नमक······जितनी पुड़ियां बनतीं हाथ के हाथ नीलाम हो जातीं। फिर पुलिस आई और नमक छीन के ले गई। अगले दिन पौ फटने से पहिले ही हमें पकड़कर जेल भेज दिया। वहां जाकर देखा तो पं० नारायनदत्त हंगवाल, पं० नरदेव शास्त्री, चौ० हुलास वर्मा, विचारानंद सरस्वती और चौ० बिहारीलाल पहिले ही आ चुके

थे। अगले ही दिन मुकदमे की कार्यवाही जेल में पं० बेनीप्रसाद डिप्टी कलक्टर के इजलास में शुरू की गई। उन दिनों पुलिस के पास दस, पंद्रह व्यक्ति स्थायी गवाह रहते थे। जब कोई राजनैतिक मुकदमा चला तो हिर-फिरकर वही सत्तार खां, अब्दुल्ला कबाड़ी और अल्लाबख्श ठेलेवाले खुदा को हाजिर जानकर सच-सच कह जाते कि बन्दा मौके पर हाजिर था और वाकया मेरा चश्मदीद है ···दो या तीन गवाह अपनी शहादत दे चुके तो हम लोगों से पूछा गया कि सफाई देना चाहते हो तो बोलो। मैंने खड़े होकर कहा, "इस्तगासे का सबूत तो खत्म हो चुका पर सरकार यह साबित करना भूल गई कि हमारी नीलाम की हुई पुड़िया में नमक था, फटकरी, चाक या चूना?" मजिस्ट्रेट ने कहा, "यह सबूत की खामी (कच्चाई) है। यदि आप लोगों को आपत्ति न हो तो अदालत स्वयं चखकर देख सकती है।" मैंने कहा, "हमें कोई एतराज़ नहीं है।" डिप्टी साहिब ने एक पुड़िया में से चुटकी भरी और मुंह में डालकर हंसते हुए बोले, "है तो नमक।" मैंने कहा, "बस अब आप हुक्म सुना दीजिए। वर्षों से अंग्रेज़ों का नमक खा रहे हो पर अन्तिम नमक गांधी का खाया है, इसको न भूल जाना।" उनका सौजन्य कि चेहरे की हवा उड़ गई और नीची-सी गर्दन करके दबी जबान से बोले, "छः महीने की सादी सज़ा, और राजनैतिक बन्दियों की उच्च श्रेणी।" हमने गांधी जी की जय बोल दी और अदालत बरखास्त। मजिस्ट्रेट ने हाथ जोड़कर हम छः बन्दियों को नमस्कार किया और चले गए। कुछ दिन बाद हमने सुना कि घर जाते ही पं० बेनीप्रसादजी ने छुट्टी ले ली और नौकरी से रिटायर हो गए। हमें फैज़ाबाद जेल भेज दिया गया। पर चूंकि हमारे कई साथियों को बी क्लास में अनैतिक कैदियों का सा बर्ताव मिल रहा था, हम छः

व्यक्तियों ने उनकी सहानुभूति में अपनी उच्च श्रेणी छोड़ दी और मामूली कैदियों की तरह जमीन पर सोने और लोहे के तसलों में दाल-रोटी खाने लगे।

अपनी जेल की मियाद पूरी करके घर लौटे तो स्टेशन पर मित्रों की भीड़ स्वागत के लिए आई। यह भी अजीब दृश्य था। पाठकों को क्या पता कि मन में कैसी गुदगुदी-सी उठती है कि जब दो आंखों से दो हजार पुतलियां अपनी नजरें भिड़ाती हैं। ऐसे अवसर पर अच्छे-अच्छों की मुंद जाती हैं और मुंह से लेने लगते हैं सांस कि जल्दी से भर लें पेट प्रेम-रस से। पिघल-पिघलकर चूने लगती है मानसता और लाल हो जाती हैं आंखें। यह पुनीत क्षण भी मनुष्य के जीवन में इने-गिने ही होते हैं। फिर भीड़ को हटाती हुई कुछ महिलाएं ले आईं शर्मदा को सामने। मुड़ी-तुड़ी साड़ी और थकी-मांदी मुद्रा, हाथों में हार, गत छःमासी पंचांग की प्रतिमा। किसी और की गोद में छः महीने की अंगूठा चूसती हुई उमा थी। जो मेरे पकड़े जाने के १० दिन बाद हुई थी। "इसे पहचानते हो?" कहकर उस बहन ने उमा को मेरी गोद में दे दिया। वो मेरा कान नोचने लगी। सब हंस पड़े। मेरी आंख गदला गईं। फिर क्या था, छूत की बीमारी की तरह सबकी आंखें पसीज गईं। मनुष्य की भावनाएं भी क्या बरसाती बादलों की तरह मंडलाती हैं कि कभी धूप तो कभी छाया।

इन दिनों आन्दोलन कुछ ढीला-सा पड़ गया था, करीब-करीब सब ही कांग्रेस वाले जेलों में बन्द थे, जो इने-गिने बाहर थे वे पं० मोतीलाल नेहरू की आज्ञानुसार विलायती कपड़े की दुकानों पर धरना लगा-लगाकर जेल जा रहे थे। देहरादून में शर्मदा त्यागी **डिक्टेटर** थी और उनके बाद खुरशैदलाल (जो बाद को केन्द्रीय

सरकार के डिप्टी मिनिस्टर बने और पाकिस्तान में हमारे हाई-कमिश्नर भी नियुक्त हो गए थे कि उनका स्वर्गवास हो गया) की जेल जाने की बारी थी। एक दिन सूचना मिली कि ऐदाले हाल पर कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग करने वालों को पुलिस ने बहुत बुरी तरह पीटा है। फौरन बाजार की हड़ताल हो गई और शमंदा और खुरशैदलाल पिकेटिंग करने के लिए मौके पर पहुंचे। साथ ही हजारों की भीड़ इकट्ठी हो गई। पुलिस ने लाठी चार्ज कर दिया। भगी पड़ गई, जैसे ही श्री खुरशैदलाल और शमंदा को पुलिस ने लाठी के हुद्दे मारने शुरू किए। दुकानदारों ने अपनी दुकानें बन्द कर दीं। फिर हम सब लोग कांग्रेस दफ्तर में आए जहां घायलों की मरहम-पट्टी हो रही थी कि शमंदा ने मुझे इशारे से एक ओर बुलाया और डिबडिबाती आंखें फाड़कर बोली, "कहीं से एक टार्च मंगा लो कि बड़ी परेड पर चलकर ढूंढें कहीं शम्भू (डिक्टेटर साहिबा की छः महीने की बच्ची को गोदी लेकर साथ चलने वाला कांग्रेस का स्वयंसेवक) उसे छोड़कर न भाग आया हो और वह भीड़ में कुचली पड़ी हो। क्योंकि सब लोग आ गए पर शम्भू नहीं आया।" मुझे भी चिन्ता हुई, पर मैंने हंसकर कहा, "यदि सचमुच परेड पर पड़ी मिली तो लोग कहेंगे कि गांधी की सत्याग्रही सेना ने ऐसी बहादुरी दिखाई कि डिक्टेटर साहिबा अपनी लड़की तक को छोड़ भागी।" मां की ममता, कि मेरी बात सुनकर शमंदा की हिचकी बंध गई। सब लोग परेशान इधर-उधर शम्भू की तलाश में भागने लगे और हम दोनों को ढाढस देने लगे कि आप वहां न जावें, शम्भू ऐसा गैरजिम्मेदार नहीं है कि उमा को परेड पर छोड़कर भाग आवे।

थोड़ी देर बाद अंग्रेज लाइन इन्स्पेक्टर सोती हुई उमा को

गोदी में उठाए आश्रम में आ पहुंचा। शम्भू भी साथ था। आते ही उसने शम्भू की कमर थपककर कहा कि यह आदमी विक्टोरिया क्रास का हकदार है। परेड के मैदान से हजारों आदमी लाठी के डर से भाग गए पर यह आदमी चौपाये की तरह कमर ऊपर किए उकड़ू पड़ा रहा। पुलिस ने उसको भागने का मौका दिया पर इसने मना कर दिया। पुलिस के तीन जवान इसकी कमर पर बेंत मारता था कि हमारे साहिब (सुपरिण्टेण्डेण्ट) ने देखा और इसको ठोकर लगाकर बोला, तुम भागता क्यों नहीं। इसने जवाब दिया, "जब तक जान में जान है भाग नहीं सकता। देहरादून की अमानत मेरे पास है।" साहिब ने उसे उठाया तो लड़की उसके नीचे घास में पड़ी अंगूठा चूसती थी। साहिब कहता है कि मिसेज त्यागी को बोलो, ऐसे मौके पर बच्चे को नहीं लाना चाहिए।

कुछ दिन बाद शर्मदा भी पकड़ी गई और श्री सुरशंदलाल भी। शर्मदा के साथ हमारे जिले की प्रमुख देवियां श्रीमती श्यामा देवी, कुमारी सरस्वती, बहिन सरस्वती सोनी, श्रीमती करतार देवी और शर्मदा की बड़ी बहिन भगवती देवी भी पकड़ी गई। और इन सबको छः-छः महीने की सजा करके फतहगढ़ जेल भेज दिया गया। महीने पीछे मुझे जिला बिजनौर में गंगा-स्नान के मेले में गिरफ्तार करके फिर एक वर्ष की सजा दे दी और मुझे फैजाबाद जेल भेज दिया।

फिर सभी अपनी-अपनी सजा काटकर घर आ गए। गांधी-इरविन सन्धि हो गई। सब ही राजनैतिक कैदी छोड़ दिए गए। महात्मा गांधी गोलमेज कान्फ्रेंस में विलायत चले गए। इस बीच गेहूं के भाव इतने

सस्ते हो गए कि किसानों को अपना लगान चुकाना कठिन हो गया। गेहूं १ रु० १४ आ० मन के भाव बिकने लगा। जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के प्रधान थे, मोतीलाल जी का स्वर्गवास हो गया था। यू०पी० कांग्रेस कमेटी ने लगान-बन्दी का आन्दोलन आरम्भ कर दिया, कि फिर मेरी बारी आ गई।

अच्छा-खासा किसी काम से बाज़ार जा रहा था कि पुलिस ने आ घेरा, वारण्ट है। कोतवाल और सरकिल इन्स्पेक्टर जान-पहिचान के थे, जैसे ही उन्होंने मोटर में बिठाया मैंने कहा, "क्या बैरिस्टर चटर्जी की ओर से नहीं निकाल सकते?" वे भी थाल-बच्चेदार आदमी थे। कहने लगे, "बीच बाज़ार से ले जाने से हंगामा हो जाने का डर है, हम तो खुद ही बाहर-बाहर से ले जाना चाहते हैं।" बस लिटन रोड पर चल पड़े, फाटक पर मोटर खड़ी की और बैरिस्टर साहिब को आवाज़ दी। बाहर आते ही उन्होंने देखा कि फिर चल दिए यार लोग हज को। बैरिस्टर साहिब की अजीब हुलिया (आकृति) थी। आंखों में दुःख-भरा प्रेम-रस और होठों पर गौरव-सनी मुस्कान। मोटर में झांका तो पुलिस वाले बाहर निकलकर अलग खड़े हो गए। क्योंकि देहरादून के सब ही लोग जानते थे कि श्री जे० एम० चटर्जी हरदयाल एम० ए० जैसे पुराने क्रान्तिकारी के साथी और रासबिहारी बोस को देहरादून में बसाने वाले व्यक्तियों में से थे। मैंने कहा, "बैरिस्टर साहिब, आप जानते हैं कि शर्मदा कितने स्वाभिमान वाली स्त्री है, वह किसीसे सहायता तो स्वीकार न करेगी," बस आगे कुछ न कहने दिया। बोले, "फ़िक्र न करो, मैं सब देख लूंगा, नमस्कार।"

मुझे जेल में बन्द कर दिया गया। दो-चार दिन बाद जेल ही में मुकदमे की सुनवाई हुई। बहुत-से दर्शक अन्दर आए जिनमें स्त्रियां

भी काफी संख्या में थीं। मजिस्ट्रेट अंग्रेज था। हथकड़ी डालकर हमें बैरक से उस चौक में लाए कि जहां खुला इजलास होना था। आते ही अदालत की कार्यवाही शुरू हो गई। थोड़ी देर बाद शर्मदा भी आ गई। मुझे देखते ही उमा ने शोर मचा दिया—पापा, पापा। और अपनी पाछी (वो अपनी मां को पाछी कहती थी) के कपड़े नोच डाले। कई दिन की बिछड़ी हुई बागी की औलाद उस बिचारी को अदालत के नियमों का क्या पता। अभी अठारह महीने की थी। जबरदस्ती मम्मी की गोद से छूटकर घुटनियों चलती मेरे कुर्ते को पकड़कर खड़ी हो गई और मेरी गीली आंखों में अपनी बाढ़-पीड़ित आंखें डालकर 'गोदी, पापा, गोदी' चिल्लाने लगी। मजिस्ट्रेट भी तमाशा देखने लगा। और देवियों ने छुपके-छुपके अपनी आंखें पोंछनी शुरू कर दीं। मैंने अंग्रेजी में कहा, "क्या अदालत एक मिनिट के लिए बन्दी को अपनी बच्ची के चूमकारने की आज्ञा देगी? हुक्म हो तो मैं इसे गोदी उठा लूं।" इतना कहना था कि स्त्रियां फूट-फूटकर रो पड़ीं और मर्दों ने भी अपने रूमाल निकाल लिए। मजिस्ट्रेट ने द्रवित स्वर में कहा, "तुम्हारे बीच में भगवान भी आने की हिम्मत न करेगा।" बस मैंने उमी ठुमी को उठा लिया।

इस लड़की ने गोदी आने पर वह उत्तेजना और छुलबुलाहट दिखाई कि मैं भी दंग रह गया। इधर चूमे ऊपर-नीचे, कभी कान में कनबाती फुर्र-फर दें तो कभी गुलगुली—"पापा, पापा घर चलो।" अदालत से बात करूं तो मेरे मुंह पर हाथ धर दे। एक तमाशा हो गया। लोग हंसे भी और प्रेमजल भी पोंछें, अदालत की कार्यवाही असम्भव हो गई। शर्मदा को कहा गया कि अपनी लड़की को ले जाओ, उसने जवाब दिया, "शायद वो बिना पापा को साथ लिए घर

न खाएगी।" सब लोग हंस पड़े। फिर पुलिस को कहा गया, "लड़की को अलग करो।" वो मुझसे चिमट गई पर पुलिस वाला रोती-बिलबिलाती को छीनकर बाहर ले गया। जल्दी-जल्दी मुकदमे की कार्यवाही पूरी की गई और मुझे एक वर्ष की कड़ी कैद और पांच सौ रुपये जुर्माना सुना दिया। बैरक में भेजने से पहले एक बार फिर उमा को देखने का अवसर दिया गया। धर्मदा ने बड़े साहस से काम लिया। कुछ दिन बाद मेरा तबादला लखनऊ जेल कर दिया गया। वहां और भी बहुत-से राजनैतिक कैदी थे। फाटक पर तलाशी बहुत सख्ती से ली जाती थी। यदि किसी जमादार से तिकड़म भिड़ाकर कोई चिट्ठी-पत्री मंगा भी लें तो डर था कि पकड़ी गई तो वार्डर डिसमिस होगा और हमारी छः महीने सज़ा और बढ़ जाएगी।

सन् १९२१ में कि जब मैनपुरी षड्यंत्र के बन्दी श्री चन्द्रधर जौहरी के साथ नैनी (इलाहाबाद) जेल की कालकोठरी में बन्द था तो तिकड़म की चिट्ठियों के लिए मैंने एक नई लिपि बना ली थी। इस लिपि की वर्णाक्षरी लिखकर धर्मदा के पास भेज दी। उसने तुरन्त ही उसे याद कर लिया और कुछ दिन बाद तिकड़म से एक पत्र भेज दिया जिसमें लिखा था।

"बैरिस्टर साहब का पत्र आया, लिखा था कि पांच-छः बरस हुए आपने उन्हें ढाई सौ रुपए दिए थे पर आपने कभी याद नहीं दिलाई। इन्कम टैक्स वालों ने पूछा तो उन्हें याद आई कि त्यागी जी से चैक लिया था। उन्होंने लिखा है कि यदि आपको त्यागी जी की ओर से रुपया वसूल करने का अधिकार हो तो एक आने का टिकट लगाकर ढाई सौ रुपये की रसीद भेज दें वर्ना जेल का पता लिखें मैं मनिआर्डर से भेज दूंगा। मैंने धन्यवाद के साथ रसीद भेज दी तो

तुरन्त ढाई सौ रुपये आ गए। और किसीको रुपया दे रखा हो तो उसे भी वसूल कर लूंगी।"

पत्र की लिपि।

पत्र को पढ़कर बैरिस्टर साहब की पूरी तस्वीर सामने आ गई। कई दिनों तक उन्हींसे बातें करता रहा—कैसा विशाल हृदय है!

जेल से लौटने पर जब शर्मदा को बैरिस्टर साहब के कर्ज का हाल सुनाया, वह बहुत लज्जित हुई और तकाजा करने लगी कि रुपये को जल्दी लौटा दो वर्ना उनसे और उनकी स्त्री से बात करने को मुंह नहीं पड़ेगा। मित्रों के कहने से बीमा कम्पनी की एक एजेंसी ले ली थी। शहर के बहुत-से लोगों ने बीमे करवा लिए कि जिससे चार या-पांच सौ रुपये मासिक की आय होने लगी। कमीशन

का पहला चैक मिलते ही मैं बैरिस्टर चटर्जी के पास पहुंचा। उनके साथ हुक्का पिया करता था। पीते-पीते मैंने कहा, "बैरिस्टर साहब, वो ढाई सौ रुपये लाया था।" बोले, "मेज पर रख दो और बस हुक्का वापिस कर दो।" मैंने कहा, "इसमें नाराजगी की क्या बात है" तो मुझे कहने लगे, "आपका कोई दोष नहीं मेरा स्वार्थ था जिसके कारण आपसे मैत्री की थी पर अब वो बात नहीं रही, हमारा सम्बन्ध बदल गया।" रुपया मेज पर रख चुका था पर बैरिस्टर साहब की बात सुनकर असमंजस में पड़ गया। फिर ठंडी सांस लेकर बोले, "आप जानते हो मेरी बुढ़ापे की संतान केवल एक टिचू (पुत्र) है। जब तक वह कालिज जाने योग्य होगा मैं जिन्दा न रहूंगा। अपने मन में यह सोचकर ढाढ़स कर लिया करता था कि खुरशेद है, त्यागी है ये दोनों मिलकर उसे पढ़ा देंगे। पर आज ज्ञात हुआ कि तुम तो उधार चुकाने वाले रिश्ते में विश्वास रखते हो। मेरे मरने पर तुम टिचू पर क्यों खर्च करोगे? तुम्हारे रुपये को वापिस करने वाला तो दुनिया में होगा नहीं।" मैं रुपये को वापिस लेने लगा तो हंसकर बोले, "यदि शर्मंदा के डर से वापिस कर रहे हो तो कोई बात नहीं, अभी खुरशेदलाल को बुलाकर इसका फैसला करता हूं।" खुरशेदलाल के आने पर बैरिस्टर साहब ने कहा कि ये ढाई सौ रुपये बिहार भूकम्प फंड में जमा करके १२५ रु० की रसीद त्यागी जी के नाम और १२५ रु० की मेरे नाम काट दो। इस तरह से दो मित्रों के बीच में समझौता हो गया। ईश्वर की कृपा से बैरिस्टर साहब अभी जिन्दा हैं और उनके पुत्र टिचू (अनिलकुमार चटर्जी) भी एम० ए० पास करने के बाद देहरादून में ही एक सरकारी अफसर हैं और घर के और सब लोग भी प्रसन्नचित्त हैं।

श्रीचरणों का सौदा

प्रो० रामदेव और आचार्या विद्यावती जी ने गांधी जी को कन्या गुरुकुल आने का निमंत्रण दे रखा था। मंगलाचरण में कन्याओं ने संस्कृत के पद गाए। बापू ने आशीर्वाद देते समय सबको विस्मित कर दिया :

"राग का दर्जा भाषा और कविता से कहीं ऊंचा है, और राग-रागिनी तो वर्ण-व्यवस्था की उपासक ठैरीं। तुमने धनाश्री के स्वरों में भीमपलासी के स्वर मिला दिए। ऐसा करने से राग वर्णसंकर हो जाता है। भले ही किसी मात्रा को लघु से दीर्घ करना पड़े पर स्वर को बदलना ठीक न होगा। स्मृति की भूल माफ हो सकती है पर श्रुति की नहीं। राग तो श्रुति है।"

जल्से के बाद जब सब लोग खड़े हो गए तो बापू ने सबके सामने शर्मदा (लेखक की पत्नी) का कान पकड़कर उसका मुंह इधर-उधर घुमाना शुरू कर दिया। मैं मर्दों में दूर खड़ा था। पर मेरी आंख बापू में और मन शर्मदा में अटका था। बापू ने पूछा, "यह कान में क्या पैना है, कुछ खूबसूरत भी नहीं लगता।" शर्मदा ने अपने बुन्दे निकालते हुए कहा, "क्या यह भी आपकी भेंट कर दूं ?" "हां, बापू ले सकता है, पर पीतल के तो नहीं हैं ?" कहते हुए बापू ने बुन्दे झोले में डाल दिए। जीवन-भर शर्मदा को अपने कान खिचाने पर नाज रहा।

स्त्रियों की सभा

हमारे सजे-सजाए पंडाल में देवियों की सभा हुई, न जाने कहां से आसमान फाड़कर के उतर आई थीं स्त्रियां। सारा मैदान अटा पड़ा था स्त्री-बच्चों से। अकेले शहर की ही नहीं, दूर-दूर से चूड़ी-बिछवे खनकाती और बैलगाड़ियों में गाती-बजाती आई थीं। उनकी संख्या को देखकर मैं डर गया कि कहीं सभा असफल न हो जाए।

शर्मदा ने स्वागत-पत्र पढ़ा। फिर थैली भेंट की। करीब दो हज़ार की थी। उसके बाद बापू का भाषण हुआ, "समाज में स्त्रियों का महत्त्व।" बापू की तबियत ऐसी खुश हुई जैसे कभी न हुई होगी। भाषण के बाद बोले :

"मैं तो जेवर भी ले सकता। दरिद्रनारायण के लिए अंगूठी भी ले सकता, और चूड़ी भी। जेवर देने में तो मर्द को पूछना क्या? वह तो स्त्री-धन है। फिर देर क्यों करता। सब थोड़ा-थोड़ा जेवर मुझे दे सकतीं। यहां आने की जरूरत नहीं, मैं तो वहीं आकर ले सकता।"

फिर उतर पड़े मंच से स्त्रियों के अथाह समन्दर में। दोनों हाथों की अंजुली बना भिखारी रूप देवियों में घूमने लगे। गुल मच गया। "अरे महात्मा यह ले", "जगह छोड़", "ऊपर क्यों चढ़ी आती है", "आंख फूट गई तेरी," "मेरी क्यों, आंख फूटे तेरी" आदि। बच्चों की चिल्ल-पों से सारी सभा भंग-भंग हो गई। बापू को वह धक्के लगे कि कभी-कभी तो जमीन पर पैर भी न टिक सका। मैं भी क्या करता, मर्द होते तो चिल्लाता, धक्के-मुक्के करके बापू के लिए रास्ता बनाता। अब मैं भी लाचार, और बापू मेरी लाचारी को भांपकर हंस दिए।

एक स्त्री अपनी दो उंगलियों में एक इकन्नी दबाए लम्बा हाथ किए दूर से चिल्ला रही थी, "ओ महात्मा! ले मेरी इकन्नी भी लेता जा।" बापू ने स्त्रियों के सिर के ऊपर से अपनी अंजुली बढ़ाकर कहा, "ला"। उसने इकन्नी डाल दी तो बापू बोले, "अभी तो पैर भी छुएगी ना?"

"हां छुऊंगी।"

"तो फिर पैर छूने की इकन्नी और लूंगा।"

तानां-सा देते हुए उस गांव की औरत ने पूछा, "किराये पै छुवावे क्या पैर भी तू?"

बापू ने कहा, "हां।"

भरे जल्से में श्रीचरणों का सौदा हो गया। उसने एक इकन्नी और दे दी और बापू ने पैर आगे बढ़ा दिया।

जब बापू की अंजुली रुपये, पैसे, नोट और जेवरों से भर गई तो बच्चों की तरह ऊपर को हाथ उठाकर खींच ढीली कर दी। सारा सामान नीचे गिराकर बोले, "यह तो फिर खाली हो गया।" फिर भर गई, फिर खाली, फिर भरी, फिर खाली। उस पंडाल में न जाने कितनी जगह बापू ने रुपये, पैसे और सोने से मिट्टी की तरह खिलवाड़ की। एक स्त्री से, जो अंगूठी दे रही थी, पूछा, "हाथ में से निकाल के दी है या जमीन से उठाकर?" कैसी खिलवाड़ थी वह! सारे नोट भीड़ में कुचल गए। पर वह व्यक्ति जो एक-एक पैसे का हिसाब रखता था, आज लुटा रहा था खजाना मिट्टी के मोल। और हमारे जिले की मातृ-शक्ति न्यौछावर कर रही थी प्रेम और भक्ति। याद करके उस दैवी दृश्य को आत्मा तृप्त हो जाती है।

फिर मैंने तीन-चार लड़कियों को तैयार किया कि वे घुस जाएं

भीड़ में और स्त्रियों से बाहर निकाल लाएं बापू को। श्री नरदेव शास्त्री और ठाकुर मंजीत सिंह बापू को कैम्प में ले गए। जाते हुए बापू मुझे कह गए, "अपने सामने खूब झाड़ के रुपये बटोरना, भला!" जल्दी-जल्दी स्त्रियों से पंडाल खाली कराया और मलगजे, फटे-टूटे नोट और नथ, बाली, बुन्दे और चूड़ी, दुअन्नी, चवन्नी और रुपये सम्हाले और कैम्प में पहुंचा दिए।

"मुझे तेरा एतबार नहीं"

रात को प्रार्थना के बाद मेरी पुकार पड़ी। मैं दरबार में हाजिर हुआ। इस आशा से गया था कि हमारे काम से बापू खुश हैं, इसलिए बुलाया। पर जाते ही बापू ने कहा।

"मैंने तो बोला था अपने सामने दरी झाड़कर सारा पैसा इकट्ठा करना, तूने किसी दूसरे को बोला ऐसा मुझे लगता है। क्योंकि सारी चीज तो आई नहीं।" मैंने विश्वास दिलाया कि मैंने अपने सामने सारा पंडाल ढुंढ़वाया है।

बापू ने जोर से कहा, "झूंठ मत बोलो, मुझे तेरा एतबार नहीं, तूने नहीं देखा। ऐसा आदमी तो किसी काम का नई जो अपनी जुम्मेवारी दूसरे पर उतार दे। खुद देखना चाहिए था। मैंने तो तेरे भरोसे रुपया फर्श पै छोड़ दिया।"

मैंने घबराकर पूछा, "बापू, आपको यह किसने कहा कि मैं वहां नहीं था?"

बापू ने एक सोने का बुन्दा निकालकर मुझे दिखाया, "मुझे यह बुन्दा बोलता है कि तू वां नई था। भला कोई स्त्री मुझको एक बुन्दा देगी और दूसरा अपने कान में रखेगी? इसका जोड़ीदार क्या

हुआ ? अगर आंख खोल के देखता तो मिलता। जो पब्लिक के पैसे के साथ लापरवाही करता, वह तो भरोसे का आदमी नहीं है। मेरे पास तो कोई अपनी पूंजी नहीं, मैं इस नुकसान को कहां से भरूंगा ? जब तक बुन्दा नहीं मिलता, वहीं जाकर झाड़ू लगाओ, चलो।"

रात हो गई थी, मैं पिटा-कुटा-सा पंडाल में पहुंचा, गैस के हंडे मंगाए, टौर्चें लीं और कुछ वह मित्र लिए जो अपनी बिगड़ी-बनी के साथी थे। दरी-चटाई सीधी कीं, उल्टी कीं, तकदीर की बात, बुन्दा मिल गया, और उसके साथ कुछ फटे तुसे-मुसे नोट मिले, पैसे-रुपये मिले, एक-दो अंगूठी, छल्ले, चांदी के बाले आदि सब मिलाकर २५०) रुपये के लगभग का सामान और मिला होगा। इसे किस मुंह से वहां ले जाऊं ? बुन्दा मिल गया, बताऊं या न बताऊं, इस असमंजस में पड़ गया, फिर मन ने कहा कि गांधी से चोरी न करो। सब सामान किसी मित्र के हाथ, यह कहकर पहुंचवा दिया कि फाटक पर जमा कर गया है, शर्म के मारे आपके सामने नहीं आया। बापू की उस दिन की डांट को याद करके प्यार उमड़ आता है। आजकल के गुलाबी लीडर तो 'आप-आप' करके बोलते हैं। मां-बाप, गुरु और बड़े भाई की डांट-धमकी, गाली और चपतबाजी की तह में जितनी अपनावट और प्यार है, उसका सौवां हिस्सा भी आजकल के दुलार-प्यार और चुमकार में नहीं मिलता।

कड़ी परीक्षा

सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह के बाद गांधी-इरविन संधि के अनुसार सभी कांग्रेस वाले जेलों से छोड़ दिए गए थे। उन दिनों मैंने देहरादून के पास अजबपुर नामक गांव में एक डेरी चला रखी थी। मियां-बीवी तो दिन-रात कांग्रेस के कामों में जुटे रहते थे और हमारी गायें अपने ही मुंह की बनाई हुई झागों से पेट पालती थीं। बिचारी भूखी-प्यासी दांत चबा-चबाकर अपनी दोपहरी बहलाती थीं। एक दिन एक गाय जो १२ सेर दूध देती थी, अपने बच्चे का तकिया लगाए, लम्बी गरदन किए जोर-जोर से रम्भा रही थी। हम दोनों घर आए तो क्या देखते हैं कि उसका बच्चा मर गया था। वह पवित्र, अगाध और निर्दोष पशु-प्रेम और आत्मिक आवेदना हमसे सही न गई। मां अपने बछड़े से बिछड़ने को तैयार नहीं थी। बड़ी मुश्किल से बछड़े को घसीटकर अलग किया। फिर उसे उठवाकर बाहर चले तो गाय टिकटिकी बांधे दरवाज़े की ओर देखती रही। लौटकर आए तो हमें देखकर उसने ऐसा सिर धुना, ऐसे पैर पीटे और ऐसी 'मां-मां' की रट लगाई कि मानो सारे जगत का मातृत्व साक्षात् रुदन कर रहा हो। धन्य है मां की ममता! दामंदा भी उसको गले लगाकर ऐसे फूट-फूट कर रोई कि जैसे दो बहनें विलाप करती हों। मेरे लिए तो वह दृश्य आज भी मंदिर की मूर्ति की तरह आरती उतारने योग्य है।

एक दिन मेरे घर की तलाशी का हुक्म हो गया। मैं शहर में आया हुआ था। पीछे पुलिस गांव में पहुंची। घर पर शर्मदा थी और एक क्रांतिकारी मित्र थे जो दो-तीन वर्षों से किसी षड्यंत्र के सिलसिले में 'रूहपोश' (छिपे फिरते) थे। संन्यासियों के गेरवे वस्त्र पहने स्वामी अशोकानन्द के नाम से ऋषिकेश आदि में कांग्रेस का कार्य करते थे। मुझे मालूम हो गया था कि उनका असली नाम सोमेद्र मोहन मुखर्जी है। मैंने एक दिन उन्हें अपने घर बुलाकर उनकी दाढ़ी पकड़ ली और यह कहकर जबरदस्ती कैंची से काट दी कि बहुत दिनों तक स्वामी जी बनकर आशीर्वाद देते आए हो, अब छोटे भाई की तरह भावज को प्रणाम करो, मुखर्जी। दाढ़ी मुंड़ने पर मालूम हुआ कि नौजवान लड़के हैं। बस मेरे रूखी-सूखी के साझीदार हो गए और क्योंकि मैं कट्टर किस्म का गांधीवादी था इसलिए मैंने मुखर्जी से वायदा ले लिया कि आयंदा से षडयंत्रियों से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे और चरखा कातेंगे। वे तो एकदम कट्टर गांधीवादी हो गए। षडयन्त्रियों के लिए यह कोई कठिन बात नहीं है। वे सब कुछ हो सकते हैं। मेरे छोटे भाई, मुनीम और मैनेजर सब कुछ हो गए। एक दिन शहर में आकर उन्होंने बताया कि "पुलिस आई थी, इधर-उधर घूमकर चली गई।" हम लोग खाना खाकर बेफिकरी से ऊपर के कमरे में सोने चले गए। रात को करीब १२ बजे मैंने नीचे का दरवाजा खुलने की आहट सुनी, आंख खुल गई। इतने में क्या देखता हूं कि कोई व्यक्ति चोरों की चाल चलता हुआ चुपके-चुपके हमारे कमरे मे घुसा और इशारे से शर्मदा को जगाकर बरामदे में जा खड़ा हुआ। शर्मदा ने मेरी ओर देखा। मैंने आखें मीच

लीं। फिर शर्मदा अपनी चारपाई से ऐसे उठी कि कहीं आहट न हो जाए और कमरे से बाहर आकर चुपके-चुपके चोर से चार बात करके चारपाई पर आ लेटी। इसी बीच मैं उसकी रजाई में सरक गया था। वह तो समझती थी कि वह मुझसे होशियार है पर रजाई में पैर डालते ही उसने देखा कि चोरी में भी मैं उसका गुरू हूं। लौटते ही मैंने पूछा कि यह कौन यार हैं कि जिन्हें पति के पास से उठा ले जाने का अधिकार प्राप्त है। उसने कहा, "यार-वार तो तुम्हारे होंगे। खबरदार जो ऐसी बात कही, मैं बापू को लिख दूंगी। मैं भी जेल काट आई हूं। जो तुमसे हो सके कर लो। मैं उसका नाम नहीं बताऊंगी।" फिर मैंने उसकी बांह पकड़के मरोड़ना शुरू कर दिया, "या तो बताओ नहीं तो तोड़ दूंगा।" कुछ देर तो वह हंसती रही फिर जोर से चिल्ला पड़ी, "बताती हूं, बताती हूं, पर कसम खाओ कि तुम मुखर्जी से नहीं कहोगे।" मैंने कहा, "कसम।" फिर शर्मदा ने बताया, "जैसे ही पुलिस ने आवाज दी, मुखर्जी फाटक पर आए और वारंट देखकर बोले, 'अभी बाहर रहो, अंदर आने से पहले मैं आपकी तलाशी लूंगा कि भाई साहब को फंसाने के लिए कोई गैर कानूनी चीज अपने साथ तो नहीं लाए हो।' फिर भागे हुए अन्दर आए और अपने कमरे के अन्दर चले गए और एक बेंत की कुरसी अमरूद के नीचे बिछाकर मेरी तरफ लपके और एकदम मेरी चोली के अन्दर हाथ डाल दिया। मैं हक्की-बक्की-सी रह गई और सोचने लगी इनका दिमाग खराब है क्या। इतने में मेरी छाती में ठंडा-ठंडा लोहा-सा सरकता अनुभव हुआ। मैं समझी कि कोई छुरी है। मुखर्जी का हाथ झटकने को थी कि पल-भर में मैं समझ गई कि उनके पास कोई बिना लायसेंस के पिस्तौल है जिसे छिपाने के लिए इतनी बदतमीजी पर

उतरे हैं। फिर बोले, 'भाभी जी, आप अमरूद के नीचे वाली कुरसी पर बैठ जाओ और अखबार पढ़ती रहो। जब पुलिस अन्दर आएगी तो आप चाबी का गुच्छा उनकी तरफ फेंक देना।' मेरा कलेजा धुक्-धुक् करने लगा। कुरसी पर तो बैठ गई पर मेरी नजर अपने जम्फर पर थी कि कहीं हृदय की धड़कन से वह पिस्तौल तो नहीं हिल रहा। आधे घंटे में पुलिस वापिस हो गई। मुखर्जी से कह गई कि त्यागी जी से कह देना कि फिक्र न करें। अगर कुछ ऐसी-वैसी चीज होती भी तो हम उसको नोट करने वाले नहीं थे। पुलिस के चले जाने के बाद मुखर्जी ने मेरे पैर पकड़ लिए और मुझसे वचन ले लिया कि मैं आपसे उस पिस्तौल की कोई चर्चा न करूं। मैंने कहा, 'मुखर्जी, आपने तो आज मेरा घर बरबाद करने का इन्तज़ाम कर दिया था।' वे पिस्तौल को शहर में छिपाने चले गए और अभी यह कहने आए थे कि हराधन बैनर्जी के घर रख आया हूं।"

मुखर्जी का बनवास

वैसे तो मैं वायदा कर चुका था, पर अपने मुंह और अपनी बीवी से किए वायदों को तोड़ने में लोक-लाज न होने के कारण कोई देर नहीं लगती। मैंने दिन निकलते ही मुखर्जी को कह दिया कि तुमने विश्वासघात किया है, फौरन घर छोड़ दो। मुखर्जी अपना बिस्तरा और किताबें बांधकर "भाभी जी वंदे, भाई साहब वदे और ऊमी द्रुमी (उमा) अमरूद के बराबर" कहकर पड़ोस के एक मित्र श्री घनश्यामसिंह रावत के घर चले गए। रावत जी भी जेल काट चुके थे। उन्होंने मुखर्जी को बड़े प्यार से रक्खा। मेरे घर से निकाल देने के बावजूद रोज प्रातः फाटक से बाहर आकर खड़े हो जाते और जोर

से "भाई साहब, वंदे" कहते । कभी-कभी मैं भी बाहर जाकर उनसे बात कर लेता । मैं जिला कांग्रेस कमेटी का प्रधान और वे मंत्री थे, दोनों पहले की तरह साथ-साथ साइकिलों पर शहर जाते । दिन-भर काम करते और शाम को लौट आते । मुखर्जी ने कभी यह नहीं झलकने दिया कि उनके मन में मैल है । ऐसा प्यारा सुभाव और अगाध देश-भक्ति ! आखिर हम भी तो आदमी थे । जाड़ों का मौसम आया । घर-भर के गरम कपड़े सिलने लगे तो मुखर्जी की याद आई । बस शर्मदा और मैं दोनों रावत घनश्यामसिंह के घर गए । "मुखर्जी कहां हैं ?" "शहर गए हैं ।" हम उनका बिस्तरा और किताबें उठा लाए और उनके पुराने कमरे को शर्मदा ने वैसे ही सजा दिया जैसे कि पहले था । रात को आठ या नौ बजे मुखर्जी आए । हम ऊपर थे । दरवाजा खुलते ही हम नीचे आ गए । मुखर्जी बंगाली गाना गा-गाकर नाच रहे थे । हमें देखते ही बोले, "भाभी जी, मेरे कमरे में चलो ।" फिर एक दीवार पर पेंसिल से लिखी तारीख पढ़ते हुए बोले कि जाते समय लिख गया था अपने बनवास की तारीख । यह क्या बात है कि पूरे एक वर्ष बाद उसी तारीख को आप मेरा बिस्तरा उठा लाईं । अब तो तकदीर पर विश्वास रखना पड़ेगा । हमें भी ताज्जुब हुआ ।

परीक्षा

गाय-भेंस तो सब बिक चुकी थी । और कोई नया धन्धा शुरू करने का न तो समय था और न रुपया और शर्मदा ने यह कसम ले ली थी कि मैं किसीसे उधार नहीं लूंगी । यह मेरे जीवन में बड़ी से बड़ी मुसीबत के दिन थे । जब घर चलाना असम्भव हो गया तो शर्मदा को उसकी मां के घर (ग्राम मवादा, जिला बिजनौर) भेज

दिया और खाना बनाने वाले का भी हिसाब कर दिया। शर्मदा के जाने के लिए रेल की टिकट कहां से ली जाए। उमा की गुल्लक तोड़ी गई। करीब ५ रुपये और कुछ पैसे मिले। देर तक मियां-बीवी में झगड़ा रहा। वह कहती थी कि दो रुपये वह ले जाए और बाकी मैं रख लूं। मैं कहता था कि रेल का सफर है, बच्ची साथ है, न जाने क्या जरूरत पड़ जाए। तुम सब अपने साथ ले जाओ। फिर मैंने दो रुपये रख लिए। स्टेशन पर छोड़ने गया तो दोनों की आंखों में आंसू आ गए। न जाने क्या-क्या भावनाएं रही होंगी। मैंने वे दो रुपये मुखर्जी के सुपुर्द कर दिए। घर आकर मैंने पूछा, "मुखर्जी, कितना चावल-दाल घर में है?" मुखर्जी ने बताया कि केवल एक महीना चलेगा। अभी हमारे जेल जाने में तीन-चार महीने की देर थी। मैंने कहा, "यदि दूसरे दिन कुकर चढ़ाया जाए तो कैसे?" मुखर्जी ने हिसाब लगाया, "तो चार महीने तक चल सकता है।" मैंने कहा, "फिर?" बोले, "मंजूर"। बस एक दिन नागा करके कुकर चढ़ने लगा। किसी दिन खिचड़ी तो किसी दिन दाल-चावल और मिर्च की चटनी। उन्हीं दिनों किसान संगठन के काम में जुटे थे। क्योंकि लगान बंदी का आंदोलन शुरू करना था। यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि किसीसे सहायता या उधार नहीं लेंगे। मुखर्जी मुझे छोड़ने को तैयार नहीं थे क्योंकि उनकी भाभी जो कह गई थीं, "अच्छे दिनों के साथी हो मुखर्जी, बुरे दिनों में अपने भाई साहब का साथ मत छोड़ना।" रात को दीपक जलाना बंद कर दिया था फिर भी मुखर्जी हर कमरे में अपनी टार्च का बटन दबा आते थे कि भाभी कहेंगी कि तुमने दिया भी नहीं जलाया। एक दिन शाम को मुखर्जी ने पूछा, "सरकारी खजाने में केवल एक आना रह गया है, जहांपनाह का हुक्म हो तो बीड़ी का एक

बंडल ले आऊं।" मैंने कहा, "अंतिम पैसा फूंक डालो, मुखर्जी।" इधर शमंदा की कई चिट्ठियां आ चुकी थीं। उत्तर देने में देर हो रही थी। हम दोनों चिन्ता में थे कि क्या करें कि मुखर्जी ने सुझाया कि जिला कांग्रेस कमेटी की बैठक होने वाली है, उसका नोटिस तो भाभी जी पे जावेगा ही, उसीकी दूसरी ओर अपनी कुशल लिख देंगे। बस मैंने भी दो-चार शब्द लिख दिए और मुख्र्जी ने भी। पर गरीबी में सबसे अधिक दुःख देता है अंतःकरण। यह कमबख्त बिल्कुल कट्टर-पंथी बन जाता है। डाक में डाल आने के बाद मैंने कहा, "मुखर्जी, पत्र तो डाल आए पर कांग्रेस के पैसे का दुरुपयोग हो गया। लोग कहेंगे कि कांग्रेस के पैसे से घरेलू पत्र लिखे जाते हैं। करूं तो क्या करूं? चोरी की फिक्र तो कम, उसको छिपाने की ज्यादा हो गई है।"

"नारायण हरि"

इसी बीच में एक दिन श्री अलगूराय शास्त्री आ गए जो मेरठ में कुमार आश्रम चलाते थे और लोक सेवक संघ के मेम्बर थे। फाटक में घुसते ही उन्होंने "नारायण हरि" की आवाज़ लगा दी। मैं गुसलखाने में था। उनकी आवाज़ पहचानकर मैंने मुखर्जी को कहा, "अमरूद के नीचे कुरसी बिछा दो, मैं अभी आता हूं।" मेरे जाने से पहले ही मुखर्जी ने शास्त्री जी को घर का सब हाल सुना दिया था और यह भी कह दिया था, "खिचड़ी पकी है, कहीं घी आदि मत मांग बैठना वरना ब्रह्म-हत्या हो जाएगी।" गुसलखाने से निकलते ही हमने एक दूसरे की कौली भर ली। मैंने कहा, "मेरी तबियत ठीक नहीं है, शास्त्री जी। आप और मुखर्जी थोड़ी-सी खिचड़ी खा लें।" शास्त्री जी के जिद्द करने पर मैं भी बैठ गया। अभी दो-चार निवाले खाए होंगे

कि शास्त्री जी रो पड़े और खड़े हो गए, "त्यागी जी, बिना धर्मदा और उमा के मैं इस घर में खाना नहीं खा सकता। यदि आप उन्हें अपने पास नहीं रख सकते तो मेरे साथ कुमार आश्रम में आ रहो।" भला ऐसे कैसे हो सकता था। मैं अपने जिले को आगामी मोर्चे के के लिए तैयार कर रहा था। शास्त्री जी नाराज होकर पैदल देहरादून चले गए। मुझे भी साथ न चलने दिया, "मैं गैर हूं तो साथ चलने के क्या माने।" शहर में शास्त्री जी अपने शाहजहांपुर जेल के साथी श्री मित्रसैन आढ़ती के घर ठहरे थे। "रात को खीर-कचौड़ी खावेंगे" ऐसा कहकर आए थे। जब खाने का समय आया तो मित्रसैन से बोले, "मैं तो आज त्यागी का मेहमान हूं।" मित्रसैन ने कहा, "चलो, हम भी वहीं खाएंगे, उनका घर बड़ा रमणीक है।" "पर उनके घर तो परसों सुबह को खाना बनेगा।" सारा वृत्तांत सुनकर लाला मित्रसैन को बहुत दुख हुआ। उन्होंने शास्त्री जी से क्षमा चाही कि हमें इसका बिल्कुल पता नहीं चला। फिर अगले दिन धूप निकलते ही मित्रसैन, उग्रसैन बैरिस्टर, लाला ऊधोराम और शंकरलाल आढ़ती (अब स्वर्गीय) सीधे अजबपुर चले आए और कहने लगे, "हमारे होते हुए आप भूखे सोवें, यह सहन नहीं हो सकता।" और एक थैली निकाल कर मेरे सामने रख दी। शायद हजार रुपये के लगभग रहे होंगे। मैंने लाला उग्रसैन से कहा, "बैरिस्टर साहब, यह मेरी परीक्षा के दिन हैं। पुराने जमाने में अप्सराएं तपस्या भंग किया करती थीं, क्या इस बुढौती में तुमने यह पेशा शुरू कर दिया है?" मेरे गहरे मित्र थे, उन्हें थैली देने का हक था पर उन दिनों हम गांधी जी के दीवाने थे, शासन-सुधा के मस्ताने नहीं थे। मैंने थैली नहीं ली। फिर उन्होंने कहा, "भेंट का रुपया है, हम इसे घर तो ले

नहीं जा सकते, कांग्रेस के फंड में जमा कर लो।" वैसे तो रोज़ कांग्रेस के लिए कुछ न कुछ चन्दा इकट्ठा करते ही थे, पर गरीबी ने आत्मा को आसमान पर चढ़ा रखा था। मैंने कह दिया, "जब तक कांग्रेस के प्रधान के घर दोनों वक्त चूल्हा नहीं चढ़ता, कांग्रेस का चंदा बंद रहेगा।" सब लोग मायूस होकर वापिस चले गए। पर शहर में हमारे ५० सत्याग्रही साथी आश्रम में खाते थे। उनके गुजारे की फिक्र हो गई। मैंने शहर-भर में मुनादी कर दी कि आज से चन्दा लेना बंद है, केवल आश्रम की सहायता के लिए सब्जी बेचने वाले सब्जी, और आटा-दाल-लकड़ी बेचने वाले बारी-बारी से रसद भेज सकते हैं। लोगों ने रसद की भरमार कर दी और उसी दिन से आश्रम वालों को अच्छा से अच्छा भोजन मिलने लगा। एक दिन भूख बहुत लग गई या नियत डिग गई कि मैंने मुखर्जी से कहा, "आश्रम में ही खा लें साथियों के साथ।" बस उस दिन वहीं खा लिया। बहुत दिनों बाद स्वादिष्ट भोजन मिला था, बहुत खा गए। अगला दिन कुकर का था, उसे नागा कर दिया। पर अब शायद अच्छे खाने को तरस गए थे। दूसरे दिन शहर में आकर मैंने अपने साथी श्री गौतम देव सर्राफ के घर पत्र लिख भेजा कि दो थाली लगाकर आश्रम में भेज दो। उन्होंने बड़े प्रेम से चुपड़े फुलके, बासमती चावल, दाल, सब्जी और मीठा आदि भेज दिया। खाते हुए शर्मदा और उमा की याद आ गई, बस आधे पेट उठ गए। योग तो भंग हो ही चुका था, पर उनकी याद ने फिर ताजा कर दिया। उसी दिन से बदपरहेजियां बंद करके अपने तीसरे दिन कुकर पर आ गए। दस-पंद्रह दिन बाद जिला बिजनौर की मेरी जमींदारी का कुछ छोटा-सा हिस्सा बिक गया। बिक्री के लगभग तीन

हजार रुपये आ गए। उसी दिन सीलोन (लंका) से कमला भाभी (स्वर्गीय कमला नेहरू) का एक पत्र आया। उन दिनों पंडित जवाहरलाल नेहरू और ये लंका का भ्रमण कर रहे थे, उसी पत्र के साथ ५० रुपये का एक चैक भी था और लिखा यह था कि उमा के लिए हैं। मैं आशा करती हूं तुम इसको स्वीकार करने में तकल्लुफ न करोगे। था असल में मेरे ही लिए। रकम भी छोटी-सी थी ताकि उसको स्वीकार करने में किसी प्रकार की आना-कानी न करूं। मैंने चैक तो रख लिया पर भुनाया नहीं और जवाहरलाल जी को लिख दिया, "कमला भाभी ने ऐसे समय पर सहायता भेजी कि जब चिट्ठी लिखने तक की शक्ति न रही थी।" ३००० रुपये आते ही मुखर्जी ने शर्मदा को तार दे दिया, "दिन बहोड़ आए हैं, तुम जल्दी आ जाओ।" वह मां के घर तो थी पर खाती क्या थी, ग़म और चिंता। हमारा तार पहुंचते ही अगली गाड़ी से देहरादून आ गई। हम दोनों उमा को खिलाते हुए घर आए। फिर घर बस गया। फिर हारमोनियम बजने लगा। फिर खीर और हलवे बनने लगे। फिर बालों पर तेल और जूतों पर पालिश लगने लगी। पर आज उस बेचारी के न रहने पर मुझे यह शेर याद आती है:

मुद्दत हुई इस हादसये इश्क़ को लेकिन,
अब तक है तेरे दिल के धड़कने की सदा याद ॥

चंदे की थैली

लाहौर कांग्रेस से पहले महात्मा गांधी ने दरिद्रनारायण (हरिजन कोष) के लिए रुपया इकट्ठा करने के हेतु हिन्दुस्तान-भर का भ्रमण आरम्भ किया। आचार्य कृपलानी इस भ्रमण के इन्चार्ज थे। सब लोगों ने अपने-अपने शहरों से आचार्य कृपलानी के पास प्रार्थना-पत्र भेजे कि महात्मा गांधी उनके यहां आना स्वीकार कर लें। मैंने भी अपने देहरादून जिले की ओर से आचार्य जी को पत्र लिख दिया। उन दिनों मुझे यह आशा नही थी कि मैं कोई बड़ी राशि इकट्ठी कर सकूंगा। इसलिए मैंने उन्हें लिखा कि "मेरा तो छोटा-सा जिला है लकड़हारों का, इस कारण बहुत रुपये तो इकट्ठा कर नही सकूंगा पर जो कुछ बन पड़ेगा शुभ चरणों को भेंट करूंगा। कृपया हमारे जिले को भी बापू के प्रोग्राम मे शामिल कर लें।" बापू ने कृपलानी जी से लिखवा दिया कि वे देहरादून आने को तैयार हैं पर मुझे कम से कम १५ सौ रुपये भेंट करने होंगे। मैंने उत्तर दिया कि "१५ सौ तो मुश्किल है, फिर भी कुछ न कुछ इकट्ठा करने का प्रयत्न करूंगा।" लिख तो दिया लेकिन रुपया इकट्ठा करने की फिक्र सिर पर सवार हो गई। अभी मेरी पत्नी जिन्दा थीं। मुझे बहुत उदास देखकर उन्होंने कहा कि, "१५ सौ तो मैं अकेली ही इकट्ठा कर लूंगी केवल स्त्रियों में से।" मैंने कहा, "तुम कहां से इकट्ठा करोगी। यदि ५ सौ भी तुम कर लो तो बहुत बोझ हलका हो जाए।"

बस वह और दो-चार देवियां जगह-जगह घूमने लगीं। ५० से १०० रुपये तक रोजाना इकट्ठा कर लाती थीं। मुझे कुछ ढाढ़स हुआ परंतु अब मैं सोचने लगा कि यदि केवल १५ सौ ही इकट्ठा किया तो फिर बात ही क्या हुई। देवियों की थैली बढ़ती जा रही थी इसलिए उन्होंने मेरी पत्नी को बहका दिया कि जब हमारी थैली मर्दों से भी बड़ी हो गई तो हम स्त्रियों की तरफ से अलग जल्सा करके अपनी थैली क्यों न दें। मैंने शर्मदा पर बहुत जोर डाला और खुशामद करते हुए यह भी कहा कि तुम्हारे-मेरे मे क्या कुछ फर्क है ? बापू के सामने दोनों को एक साथ ही खड़ा रहना उचित है। पर आप जानते हैं स्त्रियां किसीकी सगी थोड़े ही होती हैं ? मर्दों के मुकाबले वे सब एक हो जाती हैं। इनका संगठन कुछ शहद की मक्खियों जैसा है कि ज़रा-सा छेड़ दो, तो नोच-नोचकर तुम्हारा मुंह लाल कर दें। शर्मदा ने मेरी एक न मानी और अपनी थैली अगल ही देने का निश्चय कर लिया। खैर, मैंने सब्र किया।

नई सूझ

पड़ौस में एक सरकारी जंगलों के ठेकेदार रहते थे रावत सुन्दरसिंह। उन दिनों जंगलों के नीलाम शुरू होने वाले थे। नीलाम में बड़ी-बड़ी दूर से ठेकेदार आया करते थे। रावत जी ने मुझे सुझाया कि ठेकेदारों से चन्दा करो तो काफी रकम इकट्ठा हो जावेगी। मैंने ठेकेदारों से बातें शुरू कीं, "बढ़-बढ़ के बोलते हो बोली, तुम्हें शर्म नही आती ? अंग्रेजों के पास जाता है सारा रुपया। यदि आपस में एक-दूसरे का गला-काट मुकाबला बन्द कर दो तो बहुत सस्ते जंगल तुम्हें मिल सकते हैं।" मेरे समझाने का-ढंग कुछ ऐसा

अपनापन लिए हुए था कि मेरी बात जल्दी गले उतर गई। ठेकेदारों ने तुरन्त यह फैसला कर लिया कि सब ठेकेदार पहिले तमाम जंगलात का नीलाम मेरी स्कीम के अनुसार आपस में प्राइवेट तौर से कर लें। जिसके नाम इस नीलाम में जो जंगल छूट जाएं, वह सरकारी नीलाम में भी उसी बोली पर रहें। सबसे जमानत का रुपया वसूल किया गया ताकि अगर कोई दूसरा आदमी बढ़कर बोली बोले तो उसका रुपया ज़ब्त कर लिया जाए। करीब २०० ठेकेदार थे। सबने इस बात को मंजूर किया और रात-रात में सारे जंगलात का नीलाम हम लोगों ने प्राइवेट तौर से कर लिया। इस नीलाम में इतने सस्ते जंगल छूटे कि लोगों का कहना था कि यदि सबने अपनी-अपनी नीयत ठिकाने पर रक्खी तो इस बार लाखों रुपये का लाभ होगा और पुराने सब दलिद्दर दूर हो जाएंगे।

अगले दिन अंग्रेज बहादुर ने नीलाम शुरू किया। नीलाम इतने सस्ते छूट रहे थे कि एक ठेकेदार का जंगल रात की बोली से भी ५ हज़ार कम पर छूट गया। बस, फिर क्या था, आपस में फूट पड़ गई। लोग कहने लगे कि हम सबों की बोलियां भी ५ हज़ार घटी समझी जाएं। चौ० प्रतापसिंह ने फौरन मोटर ली और मेरी तलाश में सीधे अजबपुर (मेरा गांव) चले आए। मैं गुसलखाने में था। अकेली धोती पहने और नंगे पेट सामने आ खड़ा हुआ। बचपन से आर्य समाजी था। घर पर धोती और यज्ञोपवीत दो ही कपड़े पहनता था आम तौर से गर्मियों में। फौरन मोटर में बैठ नीलाम के स्थान पर आ पहुंचा। श्री बालस्वरूप और श्री इनामुल्ला ने सारा किस्सा कह सुनाया। मैंने तुरन्त फैसला दे दिया कि, यह ५ हज़ार रुपया जो उसको बचा है सबका सांझे का माना जाएगा, उसपर

एक व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं है। इस रुपये की एक मुश्तरका फंड रख दिया जाए। और इस तरह और भी जो रुपया इकट्ठा हो उसे ठेकों की कीमतों के अनुपात से आपस में बांट दिया जाए। यह फ़ैसला सबको पसन्द आ गया। और फिर सब लोग नीलाम मे जुट गए। इस तरह से और भी कई हज़ार रुपया आपस में बांटने के लिए बच गया।

अगले दिन जब ये लोग आपस मे इस रुपये को बांट रहे थे तो उन्होंने मुझे याद किया और कहने लगे कि, "हम सब आपके कृतज्ञ हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार कर लें।" ५,००० की थैली चौ० इनामुल्ला ने मेरे हाथ में यह कहकर रख दी कि, "आप हमारे नेता हैं और आपके घर तो कोई खेती होती नहीं, हम कमाते-खाते हैं, हमारी रोटी में आपका साझा है।" यह सुनकर मेरे फरिश्ते तिर गए। मैंने ५,००० स्वीकार करके उन्हींको यह कहकर वापिस कर दिए कि यह थैली जंगलात के ठेकेदारों की तरफ से महात्मा जी को भेंट कर दी जाए। परन्तु वे बहुत उदास हुए और उन्होंने कहा, "महात्मा जी के लिए हम दूसरी थैली तैयार कर देंगे।" अपनी चंदा मांगने की साख को कायम रखने के लिए मैं कभी-कभी मिलते हुए चन्दों की बड़ी-बड़ी रकमों को यह कहकर मना कर दिया करता था कि इतने रुपये की ज़रूरत नहीं है। फिर कभी ले लेंगे। आज भी यही कहकर मना कर दिया। घर लौट आया।

आज मेरे मुकाबले पत्नी इतनी छोटी बैठती थी कि जैसे हाथी के सामने टिड्डी। चिढ़ाकर मैंने कहा, "देखती क्या हो, ५,००० एक घंटे में।" इतना-सा मुंह निकल आया रानी जी का। फिर क्या था, मैंने धड़ाधड़ चन्दों की भरमार कर दी।

बापू का हुक्म

एक 'ब्रह्मचारी' नाम के ड्राइवर थे, वे एक पुरानी-सी टैक्सी चलाते थे। वे मुझसे बोले कि महात्मा गांधी को मेरी गाड़ी में बिठाया जाए। मैंने कहा, "तुम्हारी गाड़ी पुरानी और खराब है। इसमें गांधी जी नहीं बैठेंगे।" उन्होंने सीधे चिट्ठी महात्मा जी को लिख दी। वे कभी गांधी जी के आश्रम में रह चुके थे। गांधी ने उत्तर दिया कि उसीकी गाड़ी में बैठेंगे। मुझे बहुत झेंप चढ़ी, पर गांधी जी का हुक्म, कर क्या सकता था। ब्रह्मचारी ने गाड़ी चलाना ही बन्द कर दिया। मालूम हुआ कि मरम्मत करा रहे हैं। वे भी पागल थे गांधी जी के पीछे।

गांधी जी आए। मैंने चारों तरफ मुनादी की हुई थी कि गांधी जी को लेने के लिए सब लोग स्टेशन पहुंचें। लोग चाहते थे कि बाजार से सवारी निकले पर गांधी जी का हुक्म था कि जलूस न निकाला जाए। फिर भी मैंने लोगों से वायदे कर लिए थे कि सवारी बाजार से निकलेगी और भी तरह-तरह के झूठे-सच्चे वायदे कर रखे थे। डरता था कि किस-किसके वायदे पूरे करूंगा। रेल का समय हो गया। एक मिनट घंटे जैसा प्रतीत होने लगा। लाइन क्लियर हो गया, पर उस कम्बख्त ब्रह्मचारी की मोटर नहीं आई। महात्मा जी ने कहा था कि ब्रह्मचारी की गाड़ी में ही बैठेंगे, इसलिए मैंने किसी दूसरी गाड़ी का प्रबन्ध नहीं किया। रेल आ गई पर ब्रह्मचारी नहीं आए। मैं इधर देखूं, उधर देखूं। इतना हताश तो उम्र में कभी भी नहीं हुआ था। प्राण सूख गए। महीनों से जिस रेलगाड़ी के स्वागत के स्वप्न देख रहा था आज उसका आना खलने लगा। हे परमात्मा, मैं कहां समा जाऊं। गाड़ी रुकी ही थी कि ब्रह्मचारी की फोर्ड पों-पों करती, प्लेट-

फार्म पर दौड़ती हुई, बापू की खिड़की के सामने आ लगी। मोटर इतनी सुन्दर थी कि देवताओं के विमान को लज्जित कर दे। खद्दर की सीट, खद्दर का हुड और सारी गाड़ी पर नए बनाए हुए रुई के मोटे-मोटे गाले इस ढग से चिपका रखे थे कि दूर से बरफ की तरह दमक रही थी। पहियों की रुई दूसरे रंग की थी।

"अभी ई० आई० आर० है"

हमने जितने कुली थे उन सबको एकतरफ इकट्ठा कर रखा था। उनके सरदार ने सामने आकर गांधी जी को अपनी ५१ रु० की थैली भेंट की। मैंने कहा, "यह स्टेशन के कुलियों की तरफ से है।" गांधी जी बहुत खुश हुए और कहने लगे, "लेकिन, यह थैली तो १५ सौ में शामिल नहीं है।" मैंने हंसकर पूछा, "क्यों?" तो बोले, "१५ सौ तो देहरादून के लिए तय हुआ था, अभी देहरादून तो आया नहीं, यह तो ई०आई०आर० है।" हमें ५० रु० का नुकसान तो हुआ पर मजा आ गया बापू की 'सौदेबाजी' पर। मेरा प्रोग्राम था कि जहां-जहां बापू जाएं वहीं थैली भेंट करता जाऊं। स्टेशन से बाहर तांगे वालों ने १०१ रु० की थैली दी। बापू पहले तो बहुत हंसे, फिर हंसते-हंसते बोले, "अभी तो ई० आई० आर० ही है।" 'बा' भी हंस पड़ी। मैंने कहा कि ये टैक्सी वाले भी आपको २५० रु० की थैली भेंट करना चाहते है, पर चूंकि अभी ई० आई० आर० है, मेरा इरादा है कि थैली देहरादून शहर में भेंट की जाए। बापू ने कहा, "देहरादून का नाम लेकर तो यहीं दे सकते हो।" मैंने कहा, "ना, अब मैं अधिक भूल न करूंगा।"

आचार्य कृपलानी और मैं आगे बैठे, और 'बा' और बापू पीछे

मोटर चल पड़ी। उस विमान पर मैं ऐसे बैठा कि जैसे युधिष्ठिर के विमान पर उनकी 'ड्योढ़ी का चौकीदार'। मेरे भाग्य की घड़ियां फिर नहीं लौट सकतीं। कुछ भी बना दो, पर उसका सेवक होने में जो गौरव था वह राजगद्दी में नहीं है।

"अब तो सेल्फ ठीक हो गया ना?"

लोगों ने बाजार के दोनों तरफ भीड़ लगा रक्खी थी। खुली हुई मोटर थी। गाड़ी के आगे-आगे एक घुड़सवार 'श्री डंगवाल' चल रहे थे। वे जानबूझकर बहुत आहिस्ता चल रहे थे। मुझे चन्दा देने वालों से अपने वायदे पूरे करने थे न। एक लाला मित्रसैन थे, उन्होंने ५०० रु० की थैली इस शर्त पर देनी स्वीकार की थी कि दो मिनट को उनकी दुकान पर मोटर रुक जाए। अब रुके तो कैसे रुके। दुकान आने से पहले ही मैंने बापू से पूछा, "बापू, एक भक्त ने ५०० रु० की थैली देनी है, यदि आप दो मिनट को उसकी दुकान पर गाड़ी रुकवा दें।" बापू ने कहा, "यह बात कृपलानी से पूछो।" कृपलानी मेरी बराबर में बैठे थे। झल्लाकर बोल उठे, "तुम शाले बुड्ढे को मारके खा जाओ। हज़ार बार गरज पड़े तो वह ५०० रु० घर आकर दे जाए, हम किसी की दुकान पर नहीं रुकेंगे।" मैंने बापू की ओर देखा तो वे हंस पड़े, "मैं क्या के सकता?" मैं भी चुप हो गया पर ब्रह्मचारी ने पैर से मुझे ठुक्काकर आख मार दी, चोर चोर की बात पहचानता है। मैं समझ गया। इतने में लाला मित्रसैन की दुकान आ गई। ब्रह्मचारी ने खट से मोटर रोक दी। गांधी जी ने पूछा, "क्या हुआ?" ब्रह्मचारी बोले, "कुछ नहीं, ज़रा पैट्रोल बन्द हो गया है।" और नीचे उतरकर खुटरपुटर-

खुटरपुटर करने लगे। इधर मैंने देखा कि मित्रसैन ने रुपये साफ करके एक थाली में सजाकर रक्खे हैं और एक दूसरी थाली में आटे के ४-५ दिये बना रक्खे हैं जिनमें चार-चार बत्तियां हैं, जिन्हें एक एक करके जला रहे हैं। मैंने आखों आंख इशारे बहुत किए पर वे खाक न समझे। इस बीच ब्रह्मचारी ने मोटर का हैन्डिल खुरड़-खुरड़ करना शुरू कर दिया। बापू ने कहा, "अरे सेल्फ से चला लो ना?" ब्रह्मचारी बोले, "जी, सेल्फ खराब हो रहा है।" अभी मित्रसैन का तीसरा दिया जला था, मुझे तो समय टालना था। कृपलानी जी से लड़ने लगा, "मैंने पहिले से ही कहा था कि इस मोटर को न रखिए पर आपने मुझे हुक्म दे दिया कि इसीकी मोटर मे जाएंगे।" आदि। थोड़ी देर बाद लाला जी आरती का थाल लिए हुए बाहर निकले और बापू की सेवा में ५०० रु० पेश कर दिए। गाधी जी मोटर बिगड़ने का रहस्य समझ गए और बोले, "अब तो सेल्फ ठीक हो गया ना ?" काम तो हो ही चुका था, ब्रह्मचारी ने मोटर बोनट बन्द करके सेल्फ से मोटर चला दी। मोटर का चलना था कि 'बा' और बापू दोनों ने जोर से ठट्ठा मारना शुरू कर दिया। बापू ने कृपलानी से कहा, "त्यागी तो तुम्हारी आख में उंगली दे गया।" 'बा' बोलीं, "यह सब लगे-बंधे हैं।" वैसे तो कृपलानी जी को भी मजा आ गया पर हंसी को दबाकर वे कहने लगे कि "क्या करें यू० पी० के गुण्डों के बीच में फंस गए।"

बच्चा सक्का

फिर जलसा हुआ। दसियों थैलियां भेंट हुई। पर सबसे बड़ी थैली जंगलात के ठेकेदारों की थी जिसे चौधरी इनामुल्ला भेंट

करते हुए कहा कि "हमारा तो लकड़हारों का ज़िला है, दो तिहाई ग्रावादी जंगली वृक्ष और झाड़ों की है। उस बेज़ुबान बस्ती के प्रतिनिधि के रूप में मैं ग्रापका स्वागत करता हूं और अपने हाथ-पैर बेचकर जो रुपया उन्होंने इकट्ठा किया है आपको भेंट करता हूं।" फिर एक-एक करके सब ठेकेदारों ने चरण छुए और सैंकड़ों थालियों में फल और मेवे भेंट किए। हज़ारों स्त्रियां हमारे जल्से में आईं पर धर्मदा ने अपनी थैली, जो दो हज़ार के लगभग थी, हमारे जल्से मे भेंट नहीं की, उनका जल्सा अलग हुआ। मसूरी के जल्से में अभिनन्दन पत्र एक चांदी के रिक्षा में रखकर भेंट किया गया। यह रिक्षा भी वड़ी कीमत पर नीलाम हुआ। कुल मिलाकर हमारे जिले की थैली १५ हज़ार से भी अधिक हो गई थी।

मैं इतना खुश था कि उन दिनों मेरे पैर ज़मीन पर थोड़े ही टिकते थे, हवा में चलता था। लोग तो हंसी में 'सुलतान' कहते थे परन्तु उस हफ्ते मैं सचमुच सुल्तानी के मज़े लूट रहा था। मालिक भी तो था भारत-भर की सम्पत्ति का। जिसे चाहूं दर्शन करा दूं, जिसे चाहूं कैम्प से दूर भगा दूं, चाहे जिसकी ड्यूटी गांधी जी के कैम्प में लगा दूं। शहर-भर की ग्रांखों का तारा बना अपने प्रभुत्व के नशे में चूर झूमता फिरता था—मैं गांधी जी का 'बच्चा सक्का'।

"म्हारी खीर खोल दे"

सन् १६३८ में जिला देहरादून का बन्दोबस्त हो रहा था। मैंने पहिले कभी बन्दोबस्त होते नहीं देखा था। पहिले जिले-भर की सारी भूमि की पैमाइश (नाप-तोल) होती है, फिर हर गांव के किसानों और जिमीदारों के नाम नोटिस जारी होते है कि तुम्हारे खाते में अमुक-अमुक नम्बर हैं, भूमि पर तुम्हारा अधिकार मौरूसी है या 'शिकमी', जमीन खुश्क है या आबपाशी की, और तुम्हारी जमीन पर लगान मालगुजारी कितनी है और कितने दिनों से तुम्हारा कब्जा है। सब गावों के किसानों को बन्दोबस्त के दफ्तर मे आकर अपने-अपने खाते पर तसदीक के हस्ताक्षर करने पड़ते थे। बैठे-बिठाए मुझे ख्याल आया कि रिश्वतखोरी को रोकने और अपने जिले के किसानों की सहायता करने का इससे अच्छा अवसर मुझे जीवन में दुबारा नहीं मिलेगा। बस मैंने एक घोषणा कर दी कि जिले-भर के किसानों को चाहिए कि वे तसदीक के लिए अपने-अपने ग्रामों से पैदल जलूस बनाकर आवें और देहरादून आकर मेरे 'रैन बसेरा' में ठहरें। खाने-पीने का प्रबन्ध भी वहीं रहेगा और कानूनी सहायता भी मुफ्त दी जावेगी। फिर क्या था दिन मे कई जलूस गाना गाते और जय बोलते हुए रैन बसेरे आने लगे। दस जय गाधी जी की तो दो मेरी भी बोलते। मकान के सारे कमरों और बरामदों मे धान की पुआल बिछा रखी थी उसीपर रोज दो-दो, तीन-तीन सौ आदमी

आकर विश्राम करते और रात को सब अपनी-अपनी शिकायत सुनाते। मैं शिकायतें सुनकर उनको लाल, पीला, हरा किसी न किसी रंग का टिकट दे देता। जितने रंग के टिकट थे उतने ही मुशी रखे हुए थे कि जो सवेरा होते ही इनकी अर्जियां लिखते। लाल मुंशी मौरूसी-शिकमी की अर्जी लिखते, पीले लगान 'जिन्सी' से नकदी कराने की, हरे 'लगान मालगुजारी' घटाने और छुटे नम्बरों को खाते पर चढाने की लिखते। अगले दिन १० बजे तक सारी अर्जियां लिखी जाती तो फिर यह काफला जलूस बनाकर मेरे साथ कचहरी जाता। दिन-भर मैं और मेरे कांग्रेस के साथी कचहरी टंगे रहते। तीसरे पहर से लंगर खुल जाता। सब लोग दाल, चावल, चटनी और बिना छिले आलू-टिमाटर की सब्जी खाते और चले जाते। जन-सेवा के कामों में मुझे एक अजीब तजुर्बा हुआ है वह यह कि यदि कोई व्यक्ति तन्मय होकर सेवा-कार्य मे लग जाए और अपने को लुटा दे तो लोग उसे लुटने नही देते खुद उसपर लट्टू होकर लुटने लगते हैं। केवल आठ-दस दिन मेरे दाल-चावल खाने के बाद किसानों में कुछ ऐसी हवा फैल गई कि जो भी आवे अपने साथ आटा, दाल या चावल की गठरी भर लावे। बाजे-बाजे तो बोरी भरकर लाने लगे। फिर क्या था, खाने की भरमार हो गई। अकेला खाना ही नही बल्कि वकीलों की फीस और मुशियों का वेतन भी इसी अन्न से निकलने लगा। यह काम ६ महीने तक निरन्तर चला। एक दिन किसी किसान ने शिकायत की कि हमारा गांव सड़क के किनारे पड़ता है, रात-भर जलूस आते हैं, उनकी जयकारो से हमारे बच्चों का सोना हराम हो गया और जाड़ो के दिन हैं लोगो ने हमारे छप्परों पर फूस नही छोड़ा, बैलगाड़ियों के पहिये तक भी जला डाले आग

तापने के लिए, अब अपनी इस माया को समेटो और लोगों से कहो कि पैदल आने की बजाय बैलगाड़ी या मोटरबस में सफर करें। अगले ही दिन मैंने लकड़ी की टाल पर जाकर बीसियों गाड़ी ईंधन की खरीद लीं, कुछ दान में मिल गईं और जितने गांव सड़क पर पड़ते थे, उनमें ईंधन डलवा दिया कि रात को लोग आग तापें।

खीर

जब किसीके पास काम बहुत रहता है और उसकी बीवी मर जाती है तो अपनी हंसी-मजाक की भूख भी वह उसी काम से बुझाता है। जब कोई किसान अपनी बात सुनाने खड़ा होता तो मैं कहता, "पहिले वायदा करो कि काम हो जाने पर मुझे थाली-भर के खीर खिलाओगे," सारी सभा हंस पड़ती और वह कहता "खीर आपको और आपके कुत्तों को।" जब कोई खीर की बात भूल जाता, मैं डांट-कर कहता, "अपनी कहे जाएगा, कन्जूस कहीं का, मेरी भूल गया।" सब लोग एक-दूसरे की ओर आंख मारते और ठट्ठा मारकर हंसते। इस तरह मेरे पास कम से कम १०—१५ हजार खीर की थालियों के वायदे हैं, उम्र-भर भी खाऊं तो खीर खतम नहीं हो सकती और अब तो राजनीति में विरासत का रिवाज पड़ गया है, मेरे बाद मेरे बच्चों को भी खीर खाने का हक रहेगा। वही खीर वाले मेरे साथी किसान हैं कि जो मुझे वोट देकर पार्लियामेंट भेज देते हैं। बन्दोबस्त तो खतम हो गया पर उसके बाद हमें व्यक्तिगत सत्याग्रह में फिर जेल-खाने की सजा हो गई। साल-भर बाद छूटे कि फिर जेल चले गए। यह हमारी अंतिम जेल थी। दो वर्ष बाद लौटे तो रैन बसेरे में किरायेदार बसे थे। केवल मोटर गैराज और सागरपेशा खाली थे।

इतना बड़ा घर और मैं अकेला। सामान घास में रखकर मकान के इधर-उधर घूमने लगा—जब मन वर्तमान को भूलकर भूतकाल की किसी घटना या भविष्य की स्वप्न-कल्पना में निमग्न हो जाता है तो शरीर शासन-मुक्त होकर मन से आज्ञा लिए बिना, अपने पुराने सुभाव या अभ्यास के अनुसार कार्य करने लगता है—कि बस सामने के कांटेदार तार को फांदकर मैं फुलवाड़ी में घुस गया और जंगली-सी एक गुलाब की झाड़ी के पास जा खड़ा हुआ। वह छोटे-छोटे गुलाबों से लदी थी। बिखरी हुई पंखड़ियां उसकी अनाथ अवस्था का परिचय दे रही थी। एक कली तोड़कर सूंघी तो शर्मदा के जूड़े की महक आ गई। असिल में यह गुलाब की कलम शर्मदा ने, जब वह यू० पी० लेजिस्लेटिव असेम्बली की मेम्बर थी, गवर्नर की मेम से ली थी क्योंकि इस गुलाब को विलायत की किसी प्रदर्शनी में इनाम मिल चुका था मियां-बीवी रोज़ इसकी नयी-नयी कोंपल, पत्ती और कलियों को देखा करते थे और बड़े होने पर शर्मदा अपने जूड़े में इसका फूल लगाया करती थी। बस पैर इस कोने (ऐंगिल) के आदी थे, ले आए। सूंघते ही सुधि आई कि इस कली में किसीकी रूह बसी है। सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और फ़ौरन एक उर्दू का शेर कह दिया जिसके पूरे अर्थ मेरे सिवा कोई दूसरा नहीं समझ सकता :

अपने चमन में घूमता हूं मिस्ले अजनबी।
है शाखो शजर सब वही पर आशयां नहीं॥

दुनिया में सब्र भी कोई चीज़ है कि जिसके सहारे संसार के सताए हुए सब ही 'जीमसोस' अपने दुखते दिल को दिलासा दे लेते हैं। यूं आंसुओं से बुझती नहीं है जी की जलन, पर ज़रा ठण्डी पड़ जाती है।

फिर याद आती हैं वे सब बातें कि जिनसे दुखाए थे दूसरों के दिल। पर पछी-पखेरू के उड़ जाने पर पश्चात्ताप भी किया तो क्या। कहीं मरने के बाद लौट आना भी सभव होता तो दुनिया का रंग ही कुछ और होता। बीवी वालों को मेरी सलाह है कि चाहे जो करें पर रात को जब बीवी दूध का गिलास लावे तो उसे पक्के फर्श पर मत फेंक कि तुमने नही पिया तो मैं भी नही पीऊंगा, कही बीबी मर गई तो अपने दिल का दाग गिलास पर छोड़ जाएगी। न तो उस गिलास को फेंके बने न दूध पिए बने। मेरे सब गिलासों में दाग हैं मुहब्बत के।

बस रहने लगा बाहर की एक कोठरी मे। उसीमे सोने के लिए तख्त, उसीमे दफतर की मेज, उसीमें रडियो और उसीमें चाय के बर्तन। यही आते थे कलक्टर, कमिश्नर और ग्राम-निवासी और तख्त पर बैठकर करते थे बात।

"चल म्हारी खीर खोल दे"

एक दिन देहरादून से बीसियो मील दूर ढकरानी ग्राम के दो मुसलमान कोठरी की तरफ आ रहे थे। सामने चिक पटी देखकर कुछ ठिठक-से गए। मैंने अन्दर से पहिचान लिया और जोर से आवाज लगा दी, "आओ मसमुल्ला, अन्दर चले आओ।" उन्होने एक-दूसरे की ओर देखा और बात की बात मे मसमुल्ला की आख से आसुओं की धारें ढुलककर डाढ़ी से चूने लगी। मैंने समझा कि इसके घर कुछ 'ग़मी' हो गई होगी। जिन किन्हीको कोई कष्ट होता था वह मेरे घर अपना मन हल्का कर लेते थे। मसमुल्ला को रोते देखकर मैं चिक उठाकर बाहर आया और उसके कन्धे पर हाथ धरकर मैंने प्यार से पूछा कि "कहो क्या बात है, घर पर सब राजी-खुशी हैं ?" आंसु

पोंछते हुए उसने हंसकर कहा, "कोई बात नहीं, तैं जो मेरा नाम लेकर पुकारा तो मुझे रोनी आ गई।" अन्दर आए और राई और मखमुल्ला दोनों पैर झाड़कर तख्त पर बैठ गए। मैं कुर्सी पर बैठा था कि मेरी मेज पर २० या २५ रुपये रखकर मखमुल्ला ने कहा, "जेल से छूट के आया है जनें तेरे पास खाने कू भी है या ना।" बन्दोबस्त के दिनों में किसान लोग मुझे हर प्रकार की नजर भेंट दिया करते थे। एक दिन एक गांव वाले ने जो नदो से महक रहा था, भरी सभा में कच्ची शराब की बोतल यह कहकर मेरे हाथ में धर दी कि "गांधी-मार्का है थोड़ी-थोड़ी पीजे।" मैंने मखमुल्ला के रुपये रख लिए और पूछा, "घर पर सब राजी-खुशी है?" बोला :

"खुदा की नियामत है, सब मौज कर रहे हैं और तुझे दुआ दे रहे हैं। तैं बन्दोबस्त मे मेरा लगान घटवा दिया था। तू तो जेल चला गया पीछे परवरदिगार की वह बरकत हुई कि बस पुच्छे ना, उधर जर्मन की लड़ाई छिड़ गई और बांसमती का भाव ४५ रुपये तक चढ गया। मजदूरों ने अपनी मजदूरी सवा रुपये रोज कर ली। बस मैंने अपने लम्डे, लम्डी और लम्डों की बहुवां और दामादों कू जुटा कर······बीघे बांसमती जड़ दी। बस एक ही फसल मैं मेरा कर्जा भी उतर गया और मैंने दो भैंस भी खरीद ली। दो-चार दिन तो खीर खाई। जिस दिन दूध फटना बन्द हो गया तो लम्डे की बहू ने खीर पका ली। भरी थाली में से दो लुक्मे खाए होंगे अक मुझे तेरी याद आ गई कि या अल्ला जिसने खीर खुलाई वह तो आज जेल में बन्द पड़ा है और तू खीर खा रिया? बस तीसरा लुक्मा मुंह में ना चला। वह दिन और आज का दिन, तीन बरस हो लिए, तेरे सिदके म्हारे घर खीर नही पक्की। अब तू चल म्हारी खीर खोल दे।"

मखमुल्ला की बात याद करके मुझे आज भी ऐसा लगता है कि जन-सेवा का इससे ऊंचा प्रमाण-पत्र मुझे न आज तक मिला है न आइन्दा मिलेगा। असली गांधी-मार्का तो यह थी कि जिस नशे के, हम आदी थे। अब मौसम बदल गया। सेवा और शासन के दोनों नशे साथ-साथ नहीं चल सकते। सेवा प्रधान हो तो शासन भी ठीक चले, पर जब शासन ऊपर और सेवा नीचे हो जाए तो देश की खैर नहीं। इस किताब के छपने से पहिले मैं अपने मित्र मखमुल्ला का फोटो लेने 'ढकरानी' गया, पर उनका देहान्त हो चुका था। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे।

चुनाव की कलाबाज़ी : मालवीय जी और किदवई

(१)

यह लेख इसी शर्त पर लिखा गया है कि पाठकगण यह वायदा करें कि इससे प्रभावित होकर वे लेखक को अपने मन से न उतार देंगे, और जिन दूसरे सज्जनों की इस लेख में चर्चा है उनके प्रति भी अपना प्रेम कम न होने देंगे। अंग्रेज़ी में कहावत है कि 'प्रेम और युद्ध में कोई कायदे-कानून नहीं चलते।' हम लोगों ने उन दिनों अंग्रेज़ी सरकार से युद्ध छेड़ रखा था, इसलिए हम कायदे-कानून के प्रतिबन्धों से स्वतन्त्र होकर कार्य करते थे। पुरानी रहस्य की बातें हैं। मुंह पर आई को छिपाने की आदत नहीं। और छिपाऊं भी तो किसके लिए? छिपाने का अर्थ तो यही है न कि सबसे न कहकर किसी विशेष व्यक्ति से कहो। बीवी जिन्दा हो तो बीवी से, नहीं तो किसी घनिष्ठ मित्र से 'राज़' की बात कहकर समझ लो कि पूंजी बैंक की तिजोरी में जमा कर दी। मेरे हो गए दोनों रास्ते बन्द, अब मैं कहूं भी तो किससे? पाठक पर भरोसा है कि वे मेरे चरित्र, लाज और ख्याति की रक्षा करेंगे।

१६३६ का चुनाव

सन् १६३६ में कांग्रेस भी असेम्बलियों के चुनाव लड़ रही थी।

मैं तो हमेशा चुनाव के लिए अयोग्य ही रहता था। इस बार भी चूंकि दो बरस की सजा काटकर आया था, मुझे असेम्बली के लिए खड़े होने की सरकार से स्वीकृति नहीं मिली। पन्त जी ने गवर्नर को खत भी लिखा पर सरकार का जवाब आया कि श्री जवाहरलाल नेहरू के दौरे मे इस आदमी ने भरी सभा में पुलिस को घूसा दिखाया था, इसलिए इसकी निर्योग्यता (डिसक्वालिफिकेशन) खत्म नहीं की जा सकती। मुझे बहुत मायूसी हुई, पर मेरे कांग्रेस के साथियों ने मेरी धर्मपत्नी शर्मदा त्यागी को, जो स्वयं भी जेल काट चुकी थी, देहरादून से मेरी जगह खड़ा कर दिया, यह कहकर कि छः महीने बाद जब मेरी निर्योग्यता समाप्त हो जाएगी तो शर्मदा जी इस्तीफा दे देंगी और मैं असेम्बली मे चला जाऊंगा।

उन दिनों श्री रफी अहमद किदवई हमारी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी (उत्तर प्रदेश) के अध्यक्ष थे। लखनऊ मे एक बालेखाने पर रहते थे। सैकड़ों टिकट लेने वाले आदमी उनके पास आते-जाते थे। उनका बहुत ऊंचा नाम था, क्योंकि उनके घर मे कांग्रेस का टिकटघर था। इक्के-तांगे वाले उनको लखनऊ का 'कांग्रेसी नवाब' कहने लगे थे। स्वास्थ्य तो ठीक था नहीं, टेलीफोन के जोर से चुनाव लड़ रहे थे। इससे पहले रफी अहमद किदवई के सारे गुण प्रान्त को मालूम नहीं थे, असली गुणों का पता तो इस चुनाव से ही चला। अंग्रेज गवर्नर चुनावों मे विशेष रूप से दिलचस्पी ले रहे थे और उन्होंने तमाम राजा, महाराजा, ताल्लुकेदारों को मिलाकर एक पार्टी बनवा ली थी, जिसका नाम 'एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी' रखा था। बड़ा जोर था उनका। कलक्टर भी अधिकतर अंग्रेज ही थे और जो हिन्दुस्तानी थे वे भी कुछ अंग्रेजों से कम नहीं थे। अधिकतर इस कोशिश मे थे कि कांग्रेस

हार जाएं। श्री मालवीय जी ने अपनी 'इण्डिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी' खड़ी कर दी थी। अधिकांश कांग्रेस वालों का कहना था कि शायद ३०-४० फीसदी सीट कांग्रेस को मिल जाएं क्योंकि न तो हमारे पास रुपया था और न प्रभावशाली उम्मेदवार। आदमी जो अच्छे थे उनमें से अधिकतर असेम्बली के लिए खड़ा होने में अपना अपमान मानते थे। अभी तक हमारे दिमागों में महात्मा गांधी के वे शब्द गूंज रहे थे कि अंग्रेजों की असेम्बली में जाना पाप है। सन् १९२०-२१ में बायकाट किया था असेम्बली का, कालेजों का और अदालतों का। बहुत-से लोग यह समझते थे कि यह स्कीम (असेम्बलियों में जाने की) देश के लिए घातक सिद्ध होगी। हम लोगों को अपनी सफलता पर भी भरोसा कम था। अकेले जवाहरलाल नेहरू कहते थे, "तुम लोग जानते नहीं हो, बहुत बड़े बहुमत से जीतेंगे, केवल यू०पी० में नहीं, बल्कि सारे सूबों में जीतेंगे।" हम लोग इन्हें 'आसमानी नेता' कहकर हंसा करते थे। अब देखते हैं कि यह तो सचमुच ही आसमानी नेता नहीं बल्कि फरिश्ता निकला!

दूसरे थे श्री रफी अहमद किदवई, उनकी बाबत हमारी यह धारणा थी, कि ये समझते कुछ हैं, कहते कुछ हैं। पर वे बड़े विश्वास के साथ कहा करते थे कि कांग्रेस की 'कसरत राय' आ जाएगी। पंडित गोविंदवल्लभ पंत की राय मुझे याद नहीं रही, पर मेरा ऐसा ख्याल है कि उनको शायद भरोसा नहीं था कि हमारा बहुमत हो जाएगा।

मालवीय जी उन दिनों देहरादून आए हुए थे। मेरा नियम था कि सुबह-शाम उनको नमस्कार कर आऊं और सेवा पूछ लूं। श्री रफी अहमद किदवई को यह पता था कि मैं मालवीय जी के पास आता-

जाता हूं और मालवीय जी मुझपर कृपा रखते हैं। श्री किदवई बेचारे आज हमारे बीच में नहीं हैं। उनकी बात का पीठ पीछे जिक्र करना ऐसा लगता है कि जैसे किसी गिरोह का एक आदमी मुखबिर हो जाए। जेलखानों में जो मुखबिर आते थे, कैदी लोग उनको खूब पीटते थे। आज मैं भी मुखबिरी का काम कर रहा हूं, अपने एक बहुत गहरे दोस्त के खिलाफ पुराने-पुराने राज (रहस्य) खोल रहा हूं। पर, उन रहस्य के कामों में कोई स्वार्थ-भावना नहीं थी, परोपकारार्थ किए थे, इसलिए उनको पूरा पाप कहना भी गलत होगा। सब देशहित के विचार से किया गया। रफी भाई को भी पाठकगण इसी आधार पर क्षमा करें कि 'प्रेम और युद्ध के कोई कायदे-कानून नहीं होते हैं।'

मालवीय जी से सौदा !

एक दिन शाम को लखनऊ से रफी साहब का टेलीफोन आया, "त्यागी जी, आप मालवीय जी से मेरी सिफारिश नहीं कर सकते ?" मैंने कहा, "क्या कहना है, बताइए।" कहने लगे, "जरा तुम उनसे कहो कि काहे के लिए यह इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी अगल खड़ी करते हैं। तन्दुरुस्ती उनकी ठीक नहीं, दौरा करने के काबिल नहीं। फिर, इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी के उसूल सब कांग्रेस के उसूलों से मिलते हैं, केवल एक 'कम्युनल एवार्ड' के मामले में मतभेद है। फिजूल के वास्ते झगड़ा करेंगे, लाखों रुपये अपने खराब करेंगे। हमारे ऊपर भी मुसीबत आ जाएगी और न यह जीतेंगे, न हम जीतेंगे, जीतेगी एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी। उनको समझाइए, मालवीय जी को। अपने बड़े नेता हैं। अब मोतीलाल जी तो हैं नहीं, सबसे पुराने नेता वही हैं हमारे सूबे में। कहो उनसे कि फैसला कर लें।" मैंने कहा, कि "साहब, कैसा फैसला

आप चाहते हैं, किस लाइन पर बातें करूं ?" उन्होंने कहा, "थोड़ी-बहुत सीटें ले लें और चुप हो जाएं। जहां-जहां से वे सीट लड़ेंगे, हम कांग्रेस के उम्मेदवार को वापस कर लेंगे।" मैंने कहा, "कोशिश करूंगा।"

रात को मैं गया मालवीय जी के पास और वहीं सब बातें अपने तरीके से कह दी। मालवीय जी ने कहा, "देखो भाई, कांग्रेस मेरे लिए कुछ सीटें छोड़ दे तो समझौते पर विचार कर सकता हूं। तुमसे रफी अहमद किदवई ने बात की है ?" मैंने कहा, "जी हां, वे तो यह कहते थे कि अगर मालवीय जी चाहें तो मैं देहरादून आकर बात कर लूं। आप कहें तो उन्हें बुला लूं।" उन्होने कहा, "हां, जरूर बुला लो।" मैंने घर आते ही रफी साहब को टेलीफोन किया कि आ जाओ। वे अगले दिन देहरादून आ गए और श्री वेंकटेशनारायण तिवारी जी को भी अपने साथ लेते आए। श्री मालवीय को तिवारी जी पर बहुत भरोसा था। मुझसे मिले तो मैंने सारी बातें बता दीं। फिर मालवीय जी के पास ये दोनों भी पहुंचे और मैं भी गया, बातचीत होने लगी।

रफी अहमद किदवई की कुछ अदाएं ऐसी थीं कि जिनसे ज्यादा मोहब्बत करते या जिनकी ज्यादा इज्जत करते थे उनके सामने मुह से शब्द नहीं निकालते थे। मैंने पचासों बार उन्हें जवाहरलाल जी से बात करते देखा। "हां, हूं, जी हां, जी अच्छा, वाह, रहने दीजिए, क्या बात है, जी नहीं।" इस किस्म की बातें करते थे। बात अपनी कहेंगे, पर दो टूक, बहुत थोड़ी-सी, और वह भी घुमा-फिराकर।

नीची निगाह किए, जैसे कि अपने अब्बाजान के पास पहुंचते थे, रफी साहब मालवीय जी के कमरे में दबे पैर दाखिल हुए। आदाबअर्ज

किया और बैठ गए। मालवीय जी ने कहा, "कहो रफी, त्यागी जी ने कल मुझसे कहा था कि तुम समझौता करना चाहते हो। अब उसमें और क्या ? बात तो ठीक ही है। तुम यह बताओ कि कितनी सीट तुम मुझे दे सकते हो?" रफी साहब ने कहा, "यह तो आप ही बताइए कि कितनी सीट आपको चाहिएं। जितनी आप चाहे ले लें।" मालवीय जी ने पूछा, "हां, सच ?" "जी हां, जो कुछ आप हुक्म देंगे वही होगा।" मालवीय जी बोले, "तो भाई, तुम मुझको सिर्फ १५ सीट दे दो।" रफी साहब ने उत्तर दिया, "पन्द्रह तो बहुत मुश्किल है।" मालवीय जी ने कहा, "फिर तुम ही बताओ। मैं तो तुमसे पूछ रहा था कि कितनी सीट दे सकते हो, तुमने मुझपर छोड़ दिया तो मैंने १५ मांग लीं। यदि १५ नही दे सकते तो बताओ कितनी दोगे ?" रफी अहमद थोड़ी देर सोचकर बोले, "जी, २० या २५ दे सकता हूं।" हमको ताज्जुब हुआ। पन्द्रह को मना कर दिया और २५ दे दी। यह कैसी बातें करते हैं ? मालवीय जी ने पूछा, "सच?" बोले, "जी, २० देने को तैयार हूं।" मालवीय जी ने कहा, "लिखना पड़ेगा।" रफी साहब बोले, "लिख लीजिए।" "दस्तखत करने पड़ेंगे।" बोले, "जी अच्छा, आप लिख लीजिए।"

'स्पेलिंग मिस्टेक।'

तो, मालवीय जी ने चारपाई पर पड़े-पड़े तकिये के सहारे बैठकर अपने घुटने पर कागज रखकर एक मजमून लिखा और लिखने के बाद श्री रफी साहब को पढ़कर सुनाया। उस मजमून का मतलब यह था कि चूकि कांग्रेस पार्टी और कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के राजनैतिक ध्येय एक ही हैं इसलिए राष्ट्रीय मामलों में ये दोनों

पार्टी एक ही नेता को अपना नेता मानकर काम करेंगी। परन्तु कम्युनल एवार्ड या उसके प्रासंगिक विषयों में नेशनलिस्ट पार्टी अपना अलग नेता चुनकर उसी नेता के अनुसार कार्य करेगी। अंग्रेजी में शब्द ये थे :

"In the case of Communal Award and matters alike..."

रफी साहब ने कहा, "जी हां, ठीक है।" फिर बोले, "जरा इसमें एक 'स्पेलिंग मिस्टेक' रह गई है, उसे ठीक कर दूं।" मालवीय जी को बहुत ताज्जुब हुआ। उनकी स्पेलिंग मिस्टेक? वे स्वयं स्कूल-मास्टरों के मास्टर थे। बोले, "क्या बात करते हो रफी? तुमने सुना है, पढ़ा नहीं, देखा नहीं, स्पेलिंग मिस्टेक क्या चीज?" रफी बोले, "जी हां, एक रह गई है, मैं ठीक कर दूंगा।" मालवीय जी इस बात पर बहस करने लगे, "स्पेलिंग मिस्टेक कैसी?" रफी साहब बोले, "जी ग्रामर (व्याकरण) की रह गई होगी।" मालवीय जी को बहुत हंसी आई। उन्होंने एक मर्तबा और पढ़ा तमाम मजमून, बोले, "कहां मिस्टेक है?" रफी साहब बोले, "लाइए मैं ठीक कर दूंगा।" मालवीय जी ने कागज उनको दे दिया। उन्होंने अपना फाउण्टेन पेन निकाला और कुछ ठीक करके पर्चा मालवीय जी को वापस दे दिया। मुझे पता नहीं चला कि कौन-सा शब्द ठीक किया। पर मैंने यह देखा कि पर्चे को देखकर मालवीय जी मुग्ध हो गए। जैसे कवि-सम्मेलन में आवाजें लगती हैं, मालवीय जी ने कहा, "वाह, वाह, वाह, खूब है, ठीक किया, वाह, वाह, वाह रे रफी अहमद, तुम तो बहुत ऊंचे कवि निकले। हालांकि मेरी डोर तो तुमने हत्थे से ही काट दी, पर कविता तुम्हारी इतनी ऊंची है कि इसके इनाम में जो कहो दे सकता हूं। तिवारी जी, जरा इसको पढ़ो। वाह, वाह, वाह!"

तिवारी जी ने पढ़कर आंखें मींच लीं। श्री तिवारी जी को अपनी सांस और होंठों पर इतना काबू है कि बड़ी से बड़ी बात भी उनके चेहरे पर नहीं झलक सकती। न हंसते हैं और न रंज करते हैं। रफी साहब के दिमाग को पढ़ना आसान था, तिवारी जी की मुद्रा को कठिन। कितना ज्ञान का बोझ अपने सिर में छिपाए फिरते हैं पर बोलते ऐसा हैं मानो कुछ नहीं जानते। वैसे हर विषय के पंडित और किताबों के इतने कीड़े कि एक-एक पृष्ठ आंख मींचकर पढ़ सुनाएं। आंखें किताब से ३ इंच फासले पर रखकर पढ़ते हैं। शायद यही कारण है कि जो पढ़ते हैं मन में गहरा उतर जाता है। मैंने वह पर्चा देखा तो रफी हज़रत ने क्या होशियारी की कि, जहां यह लिखा था कि—"Communal Award and matters alike" वहां लफ्ज़ "alike" को काटकर "allied" (शब्द प्रासंगिक की जगह संबंधित) लिख दिया। मैं भी इस तुरत बुद्धि और सूझ पर आपे से बाहर हो गया और वाह-वाह चिल्लाकर रफी साहब की कौली भर ली।

खैर, मालवीय जी ने उस समझौते पर दस्तखत करने को रफी साहब को दिया। रफी ने कहा, "पहले आप कीजिए।" मालवीय जी ने कहा, "तुम इतनी बड़ी संस्था के प्रधान हो, कांग्रेस के, इसलिए पहले तुम्हारे हस्ताक्षर होने चाहिएं। और भाई, मेरी संस्था जो है, नेशनलिस्ट पार्टी, उम्र में भी छोटी है, कद मे भी छोटी है, मैं बाद में हस्ताक्षर करूंगा।" दो-तीन प्रतिलिपियों पर दस्तखत हुए और एक प्रतिलिपि श्री गोविंद मालवीय के सुपुर्द की गई और एक रफी अहमद किदवई ने अपने पास रख ली। बातचीत खत्म हो गई।

तीन-चार दिन बाद रफी साहब फिर लखनऊ से टेलीफोन पर बोले, "अरे त्यागी जी, एक काम और मालवीय जी से नहीं करा सकते ?" मैंने कहा, "क्या ?" बोले, "देखो तमाम सीटों पर एक-एक उम्मेदवार को हम अपना टिकट दे चुके, फिर २० सीट मालवीय जी को देनी हैं, अब २० आदमियों को हटाना पड़ेगा। किसको हटावें, यह बड़ा भारी सवाल होगा। कोई ऐसी होशियारी नहीं भिड़ा सकते कि मालवीय जी की तरफ कुछ अपने उम्मेदवार खिसका दो और उन्हें यह मत बताओ कि हमारे उम्मेदवार है। होशियारी से काम लो।" मैंने कहा, "मालवीय जी को मालूम हो गया तो वह क्या कहेंगे ? " बोले, "बात तो हमारे-तुम्हारे बीच की है, कोई हम थोड़े ही कहने जा रहे हैं, तुम फिक्र क्यों करते हो ?" मैंने कहा, "कल सरदार पटेल और महात्मा जी को क्या मुंह दिखाओगे ?" उन्होंने कहा, "फिजूल की बात करते हो, क्या उन्हे कोई आगाज आती है ?" मैंने पूछा, "कौन-कौन-से उम्मेदवार खिसकाऊं ?" बोले, "जो भी तुम्हारी समझ में आएं। तुम इसकी फिक्र न करो। जरा बातचीत तो करके देखो।"

मुझसे रहा न गया और मैं सीधा लखनऊ चला गया। वहां सब ऊंच-नीच की बातें करके लौट आया। अपने रिवाज के अनुसार उस शाम को फिर मालवीय जी के पास पहुंचा। उन्होंने कहा, "कहिए क्या खबर लाए ?" मैंने कहा, "बाबूजी, बस लखनऊ की क्या खबर है, बहुत तारीफ हो रही है आपकी। सब कांग्रेसमैन कहते हैं कि हमारे उसूली मतभेद भले ही हों, पर राष्ट्र सबसे पहले है, उसके बाद दूसरी बात है। सब आपकी प्रशंसा करते हैं। यू० पी० में

आपके मुकाबले का कोई नेता भी नहीं हैं। फिर आपसे मेरे जैसे छोटे-छोटे आदमी चुनाव भला कैसे लड़ते ? आपने हमारे सिरो से बहुत बोझ उतार दिया। सब कांग्रेसमैन आपको धन्यवाद देते हैं।" "फिर भी," मैंने कहा, "जरा-सी एक चर्चा लोगों में थी। वह कोई ऐसी नुक्ताचीनी की बात भी नहीं है पर कुछ थोड़ी-सी खुसपुस आपस में थी।" मालवीय जी ने कहा, "क्या ? वह भी बताओ, जरूर बताओ।" "कुछ लोग यह कहते थे कि बम्बई की कांग्रेस में जब मालवीय जी ने प्रस्ताव रखा था कि कम्युनल एवार्ड को स्वीकार न किया जाए बल्कि उसका बहिष्कार किया जाए तो उनकी बात गिर गई थी और वहां पर जब वोट दिए गए तो मालवीय जी की तरफ कम वोट रहे थे, सरदार पटेल का बहुमत हो गया था। सो कुछ लोग कह रहे थे कि हमारी बदकिस्मती है कि हम मालवीय जी के साथ थे। पटेल की पार्टी ने तो हममे से किसीको टिकट दिया नहीं, क्योंकि हमने मालवीय जी के साथ वोट दिया था। गिन गिनकर हमसे बदले लिए जा रहे हैं। तीन-तीन, चार-चार बार हम जेल भी काट चुके। पर सरदार पटेल की शिकायत किस मुंह से करें ? खुद मालवीय जी भी अपने उम्मेदवार खड़े कर रहे हैं। कम से कम उनको तो सोचना चाहिए था कि कुछ कांग्रेसवाले भी ऐसे हैं कि जो इधर से भी निकाले गए और उधर से भी।"

मालवीय जी ने कहा, "हैं ? क्या कुछ ऐसे आदमी हैं जिन्होंने हमारे साथ वोट दिया है ?" मैंने कहा, "गजब करते हैं आप, बहुत-से ऐसे हैं जिन्होंने आपके साथ वोट दिया था। इसमें पूछने का क्या सवाल।" मालवीय जी ने कहा, "हरे हरे हरे हरे, ऐसा है ? तो फिर तुम मुझे उनके नाम दो, मैं उनको जरूर खड़ा करूगा। और क्या

सरदार पटेल ने उनको टिकट नहीं दिया ?" मैंने कहा, "नहीं साहब। सबको बीन-बीनकर बाहर कर दिया।" (यहां सरदार साहब से क्षमा याचना करता हूं) मालवीय जी बोले, "हरे हरे हरे हरे, बड़ी गलत बात की, मुझे बहुत दुःख हुआ सुनकर। ऐसा कर दिया ? त्यागी जी, तुम मुझे उनके नाम बताओ।" मैंने कहा, "कितने बताऊं, आदमी तो बहुत हैं, कितने नाम बताऊं ?" बोले, "भाई देखो, ५-६ नाम हरिजी (पं० हृदयनाथ कुंजरू), चितामणि (सी० वाई० चिंतामणि), चौधरी मुख्तार सिंह आदि को तुम मेरे लिए छोड़ दो और बाकी १४-१५ नाम जो भी तुम उपयुक्त समझो, बता दो।" मैंने कहा, "बताऊंगा कल सोचकर।"

वहां से वापस आते ही किदवई साहब को टेलीफोन किया, "यहां तक बात पक गई है, अब आप बताइए कि कौन-कौन-से नाम दूं ?" वह तो नवाब बेमुल्क थे, बोले, "कोई-से दे दो, कुछ पूरब के, कुछ पश्चिम के। जो तुम्हारी समझ में आवें दे दो।" मैंने पूछा, "क्या सारी जालसाजी मेरे ही हिस्से में आई है ? आप तो कुर्ता झाड़ के अलग खड़े हो जाएंगे, पटेल और गांधी के दरबार में चांद छिताई मेरी होगी।" मेरे मना करने पर बोले, 'अरे, क्या बेवकूफी की बात करते हो, जरा हिम्मत से काम लो, किसी गैर को धोखा थोड़े ही दे रहे हो!"

यह बात मेरे जी को चिपक गई, मैंने अपनी मन्शा से १५-२० नाम दे दिए। एक नाम मुरादाबाद के पं० शंकरदत्त शर्मा का था, एक झांसी के श्री धुलेकर का, इसी तरह औरों के भी दे दिए। पर, मेरी बदकिस्मती थी कि अलीगढ़ में अपने एक बहुत घनिष्ठ मित्र ठाकुर टोडर सिंह थे, उनका नाम भी दे दिया। वे अलीगढ़ के पुराने काम करने वाले थे और मेरठ जेल में मेरे साथ रह चुके

थे। उनका नाम देकर मुझे पछताना पड़ा। मालवीय जी ने नामों की सूची लेते समय मुझे कहा भी था,"देख लो, कहीं ऐसा न हो कि किसीके पास चिट्ठी लिखूं और बाद में वह इन्कार कर दे। इसलिए पहले तुम उनसे लिखकर पूछ लो।" मैंने कहा, "आप फिक्र न कीजिए। मैंने सब ऊंच-नीच सोचकर नाम दिए हैं।" फिर भी मैंने इन सब मित्रों को पत्र भेज दिए और उनमें लिख दिया 'मालवीय जी को मत बताना, असल में आप कांग्रेस के ही उम्मेदवार हैं, पर मालवीय जी का टिकट ले लेना। पाच-दस हजार रुपया भी उनसे मिल जाएगा और मालवीय जी से मुकाबला भी न होगा। बिना मुकाबले के चुने जाओगे। इसी आशा से आपका नाम मालवीय जी को दे रहा हूं।'

मैंने सबको सच्ची-सच्ची बातें लिख भेजीं पर रफी साहब का वतई जिक्र नहीं किया। और, आयन्दा जाल-बट्टा करने वालों को मेरी यह वसीयत है :

"निःस्वार्थ भाव से केवल परोपकारार्थ यदि किसीको कभी कुछ कच्चा-पक्का काम करना पड जाए तो उस काम में अपने किसी साथी को कभी न फांसना बल्कि उसके दोषों को भी अपने ऊपर ओड़ लेना। ऐसा करने से पाप कुछ हल्का हो जाता है और आत्मा भी कम मलिन होती है। पर सबसे जरूरी शर्त यह है कि ऐसा जाल-बट्टा केवल उन्हींके साथ करना चाहिए जिनसे इतना गहरा अपनापन हो कि उनकी खातिर अपनी जान भी दे सको। यानी, बाप और मा की जेब से पैसे चुराने में पाप है भी तो बहुत कम है।"

बंटाधार।

पन्द्रह-बीस दिन बाद क्या घटना घटी कि वे जो हमारे दोस्त

ठाकुर टोडर सिंह अलीगढ़ के थे उन्होंने सीधा एक पत्र महात्मा गांधी को उर्दू में लिख भेजा। लिखा, "एक रास मवेशी (बैल) मुसम्मी टोडर सिंह को श्री महावीर त्यागी ने बकीमत १० हजार रुपये फरोख्त कर दिया मालवीय जी के हाथ और उसका रस्सा आपके खूंटे से खोलकर मालवीय जी के खूंटे से बांध दिया। और उसपर हिदायत यह है कि प्रोटेस्ट मत करना और किसीसे कहना मत। इसके बदले दस हजार रुपया चुनाव लड़ने के लिए दिया जा रहा है। इस हैसियत पर उतर आई है आपकी कांग्रेस।" महात्मा गांधी ने (जो मुझपर कृपा रखते थे) वह पत्र सरदार पटेल के पास भेज दिया क्योंकि वे केन्द्रीय पार्लियामेंटरी बोर्ड के प्रधान थे। अच्छा किया अखबार (हरिजन) में नहीं लिखा, वरना मैं तो उसी समय मिट्टी में मिल गया होता। सरदार पटेल ने तुरन्त पार्लियामेंटरी बोर्ड की बैठक बुलाई बनारस में। जवाब तलबी हुई कि यह किसके हुक्म से फैसला किया गया। सरदार पटेल यह चाहते थे कि मालवीय जी के विरोध में उम्मेदवार खड़े किए जाएं और एक-एक जगह मालवीय जी को हराया जाए। श्री जवाहरलाल, टण्डन जी व सम्पूर्णानन्द आदि किसीको यह समझौता पसन्द न था और सरदार पटेल को तो इसपर बहुत गुस्सा था। —यह किसकी अनधिकार चेष्टा है कि इस प्रकार का फैसला कर लिया?

मैंने टोडर सिंह के पत्र की बाबत रफी अहमद से पूछा तो वे बोले, "कह दो मैंने कोई चिट्ठी नहीं लिखी।" मैंने कहा, "अरे, क्या कहते हो, चिट्ठी पर मेरे हस्ताक्षर हैं!" कहने लगे, "मना कर दो, कह दो मेरे दस्तखत नहीं हैं, कौन पूछता है।" वे इस किस्म की बातें मज़ाक-मज़ाक में कर दिया करते थे। मैं अजीब ... में फंस

गया। इधर सरदार पटेल से मेरी मैत्री और उधर रफी साहब के हर बुरे-भले काम का साथी। न सरदार से झूठ बोल सकता था न रफी से कोई बात छिपा सकता था। मैंने रफी साहब से स्वीकृति लेकर सारा कच्चा चिट्ठा सरदार साहब को सुना दिया। फिर क्या था, रफी अहमद किदवई और प्राविंशियल कांग्रेस कमेटी की वह खबर ली गई कि वे भी उम्र-भर याद रखेंगे। पर यह तय होने पर भी कि मालवीय जी के साथ कोई समझौता न किया जाए, परिस्थिति वही रही जो पहले थी। रफी साहब सुनते सबकी थे पर करते अपने मन की थे। इसी तरह तो कण्ट्रोल (गेहूं, चीनी का) हटा गए। सब अर्थशास्त्र के पंडित चिल्लाते रहे कि पंचवर्षीय योजना बिना कण्ट्रोल के नहीं चल सकती। रफी उनसे 'हां' करते रहे पर श्री राजगोपालाचारी से अन्दर-अन्दर साजिश करके चुपके से कण्ट्रोल हटा दिया।

जरा हिम्मत और सूझ-बूझ तो देखिए उस सफल राजनीतिज्ञ की! जैसे ही मैं बनारस की पेशी से लौटा कि जनाब का टेलीफोन आया, "अरे, रुपये की बहुत जरूरत है, जरा मालवीय जी से १५-२० हजार रुपये तो दिलवाओ।" मैंने कहा, "भाई रफी, बड़ी मुश्किल से राम-राम करके बचा हूं, परसों ही तो सरदार पटेल से 'तोबा' कर आया हूं, फिर मुझे फंसवाओगे?" बोले, "नहीं, जरा होशियारी से काम लो। सीधे रुपया मत मांगो बल्कि उनसे कहो कि बनारस में लोग चर्चा कर रहे थे कि मालवीय जी बड़े हिन्दुओं के हितों के रक्षक बनते हैं और हरिजनों को उठाने का परिश्रम करते हैं, पर अपनी पार्टी के टिकट पर किसी हरिजन को खड़ा नहीं किया।" मैंने कहा, "यह तो मैं कह दूंगा पर इससे रुपये का क्या ताल्लुक?" बोले, "अरे, कह करके तो देखो।" मैं महामना के पास फिर चला गया। सरदार पटेल से वायदा

करके आया था कि आयन्दा से किदवई के चक्कर में कभी न फंसूंगा। पर कोई जान-बूझकर थोड़े ही फंसा करता था, मुझे स्वयं भी तो ऐसे कामों में कुछ मजा आता था, उन दिनों बिना कुछ औठम किए भन्न नही पचता था। मैंने महामना से वेदमन्त्र की तरह रफी साहब की बात दोहरा दी।

मालवीय जी को इतना धक्का लगा कि बल खाकर तकिये पर गिर पड़े और लम्बी सांस भरकर बोले, "अनर्थ हो गया, भयंकर भूल हो गई। अब क्या हो सकता है !" फिर कहा, "त्यागी जी, तुम तुरन्त लखनऊ जाओ और रफी से कहो कि हमारी लाज रखने के लिए दो सीटें हमें और दे दें और अपने हरिजन उम्मेदवारों को तैयार कर दें कि वे हमारे टिकट को स्वीकार कर लें।" मैं हक्का-बक्का-सा रह गया, सोचने लगा कि रफी भाई भी क्या कोई 'औलिया' हैं जो दूसरों के मन की भांप लेते हैं ? महामना ने श्री गोविन्द मालवीय को आज्ञा दी कि मेरे जाने-आने के लिए फर्स्टक्लास के खर्च का प्रबन्ध कर दें। मेरे मना करने पर भी मालवीय जी ने मुझे १००रुपये दे दिए। मैंने उन रुपयों को ऐसे प्यार और उत्साह से स्वीकार किया कि जैसे बेटा बाप से लेता है। खूब खाता-पीता और सिगरेट का धुआं उड़ाता हुआ लखनऊ पहुंचा। दोस्तों को सब किस्से सुनाए और मुफ्त का रुपया था, खूब चाय-पानी उड़ाया। रफी साहब के वालेखाने पर पहुंचा। हंसते-हंसते होश न आया। जब रफी ने मालवीय जी को टेलीफोन किया, "चार हरिजन आपको दे दूंगा पर वह दूंगा कि जिनके सफल होने की हमें आशा नही है, क्योंकि हमारे पास रुपये की कमी है और उन-पर कम से कम ५० हजार खर्च होगा।" मालवीय जी ने कहा, "इसकी फिक्र न करो। मुझे चार हरिजन दे दो तो मेरा कल्याण हो जाएगा।

खर्चा करने और जीतने की जिम्मेदारी मुझपर है।" फिर चार नाम मालवीय जी को और दे दिए और उनका चुनाव-खर्च ले लिया।' जितना भी रुपया आया वह सब तो उन हरिजनों पर खर्च किया होता, कुछ उनपर हो गया, बाकी औरों पर।

चुनाव समाप्त हो गया और हम लोगों का बहुमत हुआ। एक प्रान्त में नहीं बल्कि 'आसमानी नेता' के कहने के अनुसार भारत-भर में हमारा बहुमत हो गया। महामना मालवीय जी, श्री रफी अहमद किदवई और सरदार पटेल के चरणों में मेरा हजार-हजार प्रणाम है। उन्होंने भारत की जो सेवाएं की हैं, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। परमात्मा हमें इन बुजुर्गों के चरण-चिह्नों पर चलने की क्षमता दे।

अनुशासन

सन् १९३८ में मैं यू०पी० प्रदेश कांग्रेस कमेटी का मंत्री चुना गया। उन दिनों प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हो चुकी थी। श्री गोविन्द वल्लभ पन्त हमारे प्रान्त के प्रीमियर थे और श्री रफी अहमद किदवई, डा० काटजू, विजयलक्ष्मी पंडित, हाफिज मुहम्मद इब्राहीम और सम्पूर्णानन्द मिनिस्टर थे। मैं साधारण एम० एल०ए० था। शर्मदा का देहान्त हो चुका था और उमा, उषा और सरोज तीनों अपनी मौसी के पास दिल्ली रहती थीं। मेरे साथी श्री अजीत प्रसाद जैन रफी अहमद किदवई के महकमा माल के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी थे। अभी तक डिप्टी मिनिस्टरी के पद चालू नहीं हुए थे। दिन-भर मैं असेंबली के कामों में और सुबह-शाम प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में जुटा रहता था। खाने-पीने और सोने-बैठने का प्रबन्ध श्री अजीत प्रसाद जैन के घर था। उन दिनों वे मेरे गहरे मित्रों में से थे। जब कभी मियां-बीबी की लड़ाई हो जाती तो मैं परिवार का 'जज' था, दोनों को बुलाकर डांट-डपट कर देता और अजीत पर कुछ न कुछ जुर्माना करके भाभी जी को दिलवा देता। बनिये की बेटी और सुभाव की देवी, उसे तो इतना ही काफी था कि मुकद्दमा जीत जाती, फिर जुर्माना नकद दिलवाता था। अजीत प्रसाद के बेटों शांति और श्यामा को भी किसीने सुझा दिया कि बाप पर मुकद्दमा करो तो जज साहब जुर्माना दिलवा देंगे। आए दिन दोनों

कोई न कोई मुकद्दमा ले आते। मैं बाकायदा हलफिया बयान लेता, वल्दियत पूछता और बच्चों को दो चार आने दिलवा देता। एक दिन मैंने छोटे बच्चे श्यामा का मुकद्दमा खारिज कर दिया। बस उसको इतना दुख हुआ कि उसने रोना शुरू कर दिया और मुद्दालय (श्री जैन), गवाह (अपनी अम्मी) और अदालत को मारना शुरू कर दिया— अभी तीन या चार वर्ष का तो था ही। आज श्यामा विलायत से बड़ी योग्यता के साथ डाक्टरी पास करके दिल्ली में दिलों का इलाज करते है। उनका असली नाम है क्रान्ति प्रसाद जैन।

उन दिनों चूंकि श्री जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आज़ाद, राजेन बाबू और महात्मा गांधी सभी असेम्बलियो से बाहर थे इसलिए कांग्रेस वर्किंग कमेटी, पालियामेंटरी बोर्ड और प्रांतीय और जिला कांग्रेस कमेटी सभी अपनी-अपनी जगह सम्मानित संस्थाएं मानी जाती थी, और कोई भी प्रादेशिक चीफ मिनिस्टर इन कमेटियों के प्रस्तावों की अवहेलना नही कर सकता था। एक बार गवर्नर साहब ने (जो अंग्रेज थे) हमारी प्रान्तीय सरकार के राजनैतिक बंदियो को छोड़ने वाले प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तो पालियामेंटरी बोर्ड ने पन्त जी को त्यागपत्र देने का आदेश दिया। गोकि पन्त जी इस आदेश से खुश नही थे फिर भी तुरन्त हमारे मंत्रिमंडल ने त्यागपत्र दे दिया। पार्टी में बातचीत की बहुत स्वतंत्रता थी। उन दिनों कांग्रेस संस्था का रूप एक परिवार का सा था। इसमे एक-दूसरे की डांट-डपट भी होती थी और रूठे हुओं की खुशामद भी। असल में उन दिनों हमारा सपना साझे का था। सभी अपनी-अपनी शक्ति अनुसार उसमें रंग भरते थे, इसलिए आपस में ईर्ष्या नही थी—स्पर्धा थी। आज की संतति के लोग उन दिनों का चित्रण पूरी तरह से नही कर

सकते क्योंकि अब वे सुपने फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। अब तो हम सब व्यक्तिगत सुपने देख रहे हैं और अपने-अपने निजी सुपनों में रंग भरने की चिन्ता करते हैं। जवाहरलाल जी उन दिनों में भी हमारे नेता थे परन्तु मोतीलाल जी के रहते-रहते वे बड़े भाई के समान रहे पिता के तुल्य नहीं। जो उमर में बहुत छोटे थे वे पैरों की ओर हाथ बढ़ाकर नमस्कार करते थे, छूते नहीं थे कि कहीं ठोकर न मार दें, क्योंकि अपनी जवानी में ये बड़े मरखने-से थे और अपने पैरों को छुवाने में ऐसे शर्माते और गुस्सा करते थे कि जैसे बचपन में किसीने गाल छू दिए हों।

उन दिनों पन्त सरकार का बहुत नाम था। श्री रफी अहमद किदवई ने किसानों को अपनी भूमि पर मौरूसी अधिकार दिए थे, सारा प्रान्त कांग्रेस की जय-जयकार कर रहा था। गोकि आजकल (सन् १९५९) में करोड़ों रुपये कम्युनिटी प्रोजेक्ट के नाम पर खर्च हो रहे हैं, पर जितनी उमंग और उत्साह उन दिनों में था उसका सौवां हिस्सा भी आज ग्रामों में नहीं है। १९३९ में महायुद्ध छिड़ते ही हम लोगों ने सरकारें छोड़ दीं और व्यक्तिगत सत्याग्रह करके सब लोग जेलों में चले गए। और असेंबलियों पर कब्ज़ा कर लिया। सन् १९४२ के आन्दोलन के बाद अंग्रेज़ों से समझौता हो गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू केन्द्रीय प्रधान मंत्री और पंडित पन्त फिर यु०पी० के चीफ मिनिस्टर हो गए थे। एक दिन मैंने एसेम्बली में अन्न के कंट्रोल और राशनिंग के विरुद्ध बहुत तीखी-सी तकरीर कर दी, और कह दिया कि रिश्वतखोरी का बाज़ार गरम है। यह बात रफी साहब तक को पसन्द नहीं आई। रात को पार्टी की कार्यकारिणी बुलाई गई और मेरा 'कोर्ट मार्शल' किया गया। पन्त जी ने कहा, "जब

त्यागी जैसे पुराने साथी एसेम्बली में ऐसी तीखी-तीखी तकरीर करें तो अनुशासन कहां रहेगा। इन्होंने केवल प्रान्तीय सरकार को ही नहीं बल्कि केन्द्रीय सरकार पर भी तरह-तरह के अभियोग लगाए हैं। जिस वृक्ष की छत्र-छाया में बैठे हैं जब उसीपर वार किया जाएगा तो संस्था का क्या हाल होगा।" २५ वर्ष के जिगरी दोस्त, मुसीबत के साथी कि जिनके साथ दांत काटी रोटी का सम्बन्ध था, वे मुझे कांग्रस से निकालने की बात पर हां कैसे कहें। हमारी कार्यकारिणी के सभी सदस्य परेशान थे। फिर भी कायदे में जवाब तलब किया गया तो मैंने कहा, "मुझे सभी मित्रों के बीच में यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि मेरी तकरीर से पार्टी का अनुशासन भंग जरूर हुआ है, मुझे स्वयं इसका इतना दुख है कि शाम की चाय गले न उतर सकी, अपनी संस्था की बुराई मैं स्वय करूं यह मुझे अच्छा नही लगा, पर बहुत आदर के साथ मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस ढग से पन्त सरकार चल रही है उससे कांग्रेस की मान-मर्यादा को ठेस लग रही है और साथियों में निर्भीकता की जगह चरण-चुम्बन की प्रवृत्ति बढ रही है। सरकार हमारे सुपनों में रंग भरने की जगह हमें नैतिक पतन की ओर ले जा रही है। हमें घुसखोरी और चोरबाजारी को सख्ती के साथ दबाना चाहिए पर हम लोग अपने बनने-संवरने में ऐसे जुटे हैं कि शासन की खबर नहीं, वह तबाह हो रहा है। मैंने यह तकरीर जानबूझ कर की है, क्योंकि कांग्रेसी सदस्यों का यह भी एक कर्तव्य है कि वे अपनी संस्था को अग्रगामी और उन्नत बनाने का प्रयत्न करें और प्रतिगामी न होने दें। देश का ह्रास हो और हम अनुशासन के धागों से मुंह सिए बैठे रहें यह शोभा की बात नहीं। मेरी ऐसी तकरीरों से संस्था को बल मिलेगा।"

श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, जो हमारी असेम्बली में स्पीकर थे, पार्टी-मीटिंग में जाया करते थे। उन्होंने कहा, "जब तुम जैसे पुराने साथी यह मानते हो कि तुम्हारी स्पीच पार्टी के अनुशासन के विरुद्ध थी तो तुम्हें क्षमा-याचना कर लेनी चाहिए।" मैंने उत्तर दिया, "जो आप कहते हैं वह तो ठीक है टंडन जी, पर मेरी तीन बेटियां हैं, मैं नहीं चाहता कि मेरे मरे पीछे उन्हें यह सुनकर गर्दन नीची करनी पड़े कि मुसीबत की रात में जब उनके बाप की परीक्षा का समय आया तो उसने भी सिर झुका दिया था। दुनिया में जितने बड़े-बड़े उपन्यास लिखे गए हैं उनके लेखकों ने अपने नायक के चरित्र में एक समता रखी है जैसे कि 'ला मिज़रेबिल' का जीन वाल जीन, या 'डान क्विकज़ोट' का नायक। मैं भी एक नायक हूं, स्वयं अपने जीवन का उपन्यास लिख रहा हूं। माफी मांगने से मेरे चरित्र की समता भंग हो जाएगी।" बेगम वाजिद.ने कहा कि मैं तो त्यागी जी के खिलाफ कुछ कह नहीं सकती क्योंकि उनमें कोई दाग नहीं है। ठाकुर मलखान सिंह ने पूछा, "जब आप खुद मानते हो कि आपने अनुशासन भंग कर दिया है तो आप ही बताइए कि हमें क्या निर्णय देना चाहिए ?" मैंने कहा, "कांग्रेसमैन होने के नाते मेरी राय है कि आप मुझे कांग्रेस से निकाल दें और असेम्बली से मेरा त्यागपत्र मांग लें। ऐसा करने से कांग्रेस की मान-मर्यादा बढ़ेगी और भविष्य में अनुशासन भंग होना भी कम हो जाएगा। यदि आपने ऐसा न किया तो मैं इससे भी कहीं अधिक तकरीरें करने वाला हूं क्योंकि मुझे आपके शासन से तसल्ली नहीं है। यदि मुलजिम को सफाई के गवाह पेश करने का भी अधिकार हो तो मैं रफी साहब से पूछना चाहता हूं कि वे हलफ उठाकर कह दें कि उन्हें वर्तमान शासन-

नीति पसन्द है।" रफी साहब हंस पड़े। मैंने कहा, "हंसी के माने हैं सहमति। दूसरे गवाह सम्पूर्णानंद हैं। कहिए बाबू जी, आपको तसल्ली है?" वे भी चुप रह गए। मैंने कहा, "या तो हां बोलो वरना मैं समझूंगा कि 'अलखामोशी नीम रजा' (चुप्पी के अर्थ हैं सहमति)।" वे कुछ नहीं बोले। फिर मैंने विजयलक्ष्मी पंडित से पूछा (मेरे ये तीनों गवाह पंत जी के कैबिनेट में थे)। विजयलक्ष्मी से मैंने कहा, "तुम पंडित मोतीलाल नेहरू की मरी मिट्टी की निशानी हो। बताओ, तुम्हें मौजूदा शासन-प्रणाली से संतोष है?" वे बोलीं, "कतई नहीं।" अब तो पंत जी को लेने के देने पड़ गए। आए थे रोजे छुड़वाने, नमाज गले पड़ गई। बोले, "जैसे पार्टी की समझ में आए फ़ैसला करे। मैं पार्टी पर अपनी राय थोपना नहीं चाहता," और कुर्सी छोड़कर बाहर जाने लगे। मैं भी पीछे-पीछे यह कहकर चल दिया कि ये सब न्यायाधीश मेरे मित्र हैं, आपकी गैरहाजरी में ये मुलजिम से मुरव्वत खा जाएंगे और न्याय नहीं कर सकेंगे। इसलिए मुझे भी अपने साथ ले चलो। पंत जी ने कहा, "तुम्हें यहीं रहना चाहिए।" मैंने कहा कि जब आवाज पड़ेगी तो मुलजिम हाजिर हो जाएगा। वे डाल-डाल तो मैं पात-पात। पंत जी चीफ मिनिस्टर थे पर उनकी इच्छा के मुताबिक पार्टी मुझे निकालने को तैयार न हुई। कुर्सी छोड़ जाने से पार्टी पर कुछ असर जरूर पड़ता, मैंने भी अपनी कुर्सी छोड़ दी, बड़े बेहया से पड़ गया था पाला। क्योंकि यह सब होते हुए भी मेरे मन में बाल नहीं पड़ा था, पन्त जी का पहिले की तरह अपने बड़े भाई और साथी जैसा आदर करता था। यह उन्हें भी मालूम था कि मैं उनका आदर करता हूं। मजबूरन वे हंसकर फिर कुर्सी पर बैठ गए। फिर मुकदमे की कार्यवाही शुरू हुई। श्री अलगूराय शास्त्री

ने यह वेद मंत्र पढ़ा :

"मानो बधाय इत्मवे जिहीडानस्य रीरिधः।
मा हृडानस्य मान्यवे ॥"

अर्थात मुझे मारने मत दौड़ो मैं शर्मिन्दा हूं। मुझपर क्रोध मत करो, मैं लज्जित हूं। —और कहा कि त्यागी जी का यह स्वीकार कर लेना ही पर्याप्त है कि उनसे अनुशासन भंग हो गया। बस, यहीं किस्सा बन्द कर दीजिए। वरना पंत जी को चाहिए कि सोने के थाल में घी के चिराग जलाकर कांग्रेस वालों के मुंह देखें। जिसका दामन पाक और दिल बेदाग हो और जिसने अधिक त्याग किया है उसे पकड़ लावें वह त्यागी को बाहर निकाल सकता है, हमारी तो यह हिम्मत है नहीं। मेरा जी भर आया और मैंने कहा, "आप लोगों के सिवाय मैं किसीका दोस्त नहीं, हम सब एक ही छतरी पर उतरने वाले कबूतर थे। मेरी छतरी तो छिनेगी पर आप निकाल दीजिए। मैं निकाल दिए जाने के बाद भी कहीं और तो नहीं चला जाऊंगा। कांग्रेस दफ्तर के बाहर कम्बल बिछाकर सड़क की पटड़ी को अपना घर घोषित कर दूंगा। जब आप लोग मेम्बर बनाने जाया करेंगे तो मैं आपसे २० कदम पीछे-पीछे चलूंगा। जो भी दुकानदार मेम्बर बनने से मना करेगा, उसको समझा-बुझाकर आपके पास भेज दूंगा। पर माफी नहीं मांग सकता।"

कुछ निर्णय न हो सका। इसलिए अनुशासन-प्रस्ताव इन शब्दों में पास हो गया, "यह कमेटी त्यागी जी की तकरीर को अनुशासन के विरुद्ध मानती है।"

संकल्प की महिमा

सुलझाव की गहरी उलझनों और जटिल पेचीदगियों से जो परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं उन्हीको समस्या कहते हैं। समस्या का कोई मौलिक अस्तित्व नहीं होता। यदि समस्याओं का कोई अस्तित्व होता तो सुलझ जाने के बाद भी वे वैसी ही बनी रहतीं जैसे चाबी से खुल जाने पर ताला। हर समस्या के सुलझाने के लिए व्यक्ति-विशेष की मनबुद्धि और अनुभवों के अनुसार उसे निश्चित समय के लिए एकाग्रचित्त होना अनिवार्य है। जिस समस्या को मैं चार घंटे के ध्यानाग्रह से सुलझा सकता हूं वह महीनों में सुलझ पाती है, क्योंकि मुझे निरन्तर एक ही बात पर ध्यान जमाए रखने का अभ्यास नहीं है। आधी मिनट एक समस्या पर ध्यान करके चित्तवृत्ति दूसरी ओर चली जाती है। इस तरह से मैं अपनी समस्याओं पर बारी-बारी से किश्तों में विचार करता हूं। जैसे ही ध्यान के निश्चित घंटे पूरे होते जाते हैं समस्याएं बारी-बारी से स्वयं सुलझती जाती है।

अनुभव से पता चलता है कि समस्याओं के असली हल यों तो बुद्धि द्वारा ही मिलते हैं पर उनकी वास्तविक झलक मन-भावना (सबकोन्शस माइण्ड) से उदय होती है। मन की कोई भाषा नहीं है नाही वह शब्द, वाक्य और व्याकरण का मोहताज है। वह तो सुपनों की तरह संकल्प-विकल्प, इच्छा-आकांक्षा, आशा-भय, ईर्ष्या-द्वेष, आदान-प्रदान, स्नेह-संग्राम और श्रद्धा-भक्ति की धूप-छांव में खिलवाड़ करता

रहता है। पर हर व्यक्ति का भविष्य इसी अर्द्धचेत मन पर निर्भर है। सचेत बुद्धि तो एक निष्काम वकील की तरह बुरा-भला और हानि-लाभ आदि का निर्णय करती है, यह काम भी अति आवश्यक है।

मनोविज्ञान के पंडितों का जो भी मत हो, अपना अनुभव तो साफ बताता है कि मन राजा और बुद्धि (कांशस) उसका मन्त्री है। मन यदि आत्मा नही तो उसके निकटतम अवश्य है। मैं तो यहां तक कहूंगा कि संसार में जो बड़ी से बड़ी दर्शन, कला, कवित्व और विज्ञान-सम्बन्धी खोजें होती हैं वे सभी अर्द्धचेत मन से प्रेरणा के रूप में उदय होकर सचेत बुद्धि द्वारा प्रमाणित और प्रकाशित होती हैं। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि मनुष्य अपने अर्द्धचेत (मन) को भ्रमरहित बनाने का प्रयत्न करे।

मूर्खता के थैले

यदि पाठकगण थोड़े स्पष्ट चित्रण की आज्ञा दें तो मैं यह कहूंगा कि हममें से ९९ प्रतिशत मूर्खता के थैले हैं, क्योंकि बचपन से हमारी यह आदत चली आई है कि जब कभी कोई विचार-कल्पना मन में आती है तो सचेत बुद्धि से पूछते हैं कि अमुक कल्पना या विचार बौद्धिक है या मौखिक। समझदारी की हुई तो कह दी और नासमझी की हुई तो मन में दबा ली। इस तरह हमारी सारी होशियारी बाहर और मूर्खता अन्दर जमा हो रही है। यदि धेधड़क अपने सारे विचार बाहर करते रहते तो ज्ञानी जन हमारी नासमझी की बातें सुनकर उनकी शुद्धि करते रहते। इस प्रकार हमारे अर्द्धचेत मन के तहखाने में अज्ञान कम और ज्ञान अधिक हो गया। अर्द्धचेत मन के भीतर प्रकृति की छाया और संकल्प-विकल्प और आशा-भय आदि की खाद

ही उसकी उर्वरा-शक्ति है कि जिसमें प्रेरणा के अंकुर उगते हैं। जैसी खाद होगी वैसी ही प्रेरणा भी होगी। इसलिए बौद्धिक विकास के लिए नितान्त आवश्यक है कि अर्द्धचेत मन को भ्रम, भ्रान्ति और रूढ़िवाद के संस्कारों से बचाए रखने का भरसक प्रयत्न किया जाए।

संकल्प-क्रिया

जीवन की कठिन से कठिन समस्या को सुलझाने और अभिलाषा और आकांक्षाओं की पूर्ति के सुभाव भी इसी उर्वरा भूमि से उपजते हैं। पर जिस समस्या का उत्तर लेना हो उससे अपने अर्द्धचेत (मन) को पूरी तरह रंग देना पड़ेगा। सारी इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति का एकमात्र उपाय है अर्द्धचेत (मन) को अगाध रूप से अमुक मनोकामना से संस्कारित कर देना। क्योंकि सफलता के सब रास्ते इसी धुंधली गली से निकलते हैं। हम इस संस्कार-विधि को संकल्प-क्रिया कहेंगे। बार-बार अपनी रचनात्मकवृत्ति का आवाहन करके अपनी मनोकामना के रंग-बिरंगे और रोचक सुपने देखो, दिन-भर देखो और रात्रि को उन्हीं सुपनों को देखते-देखते सो जाओ। सोते समय जब नींद से मन की फाटकरूपी आंख मिचती हैं तो सचेत बुद्धि अपनी दुकान बढ़ा जाती है। केवल अन्तिम विचार की झलक ही अर्द्धचेत मन पर समाई रहती है। इस तरह से बिना परिश्रम किए घंटों तक मन का संकल्प संस्कार होता रहता है। समाधि की नियत अवधि समाप्त होते ही समस्या सुलझाने के रास्ते या तो सुपनों के रूप में या आभास द्वारा स्वतः सूझने लगते हैं। ये सब रास्ते साधारणतया सीधे और सच्चे होते हैं। इन रास्तों में पड़ते ही हमारी ध्येय-प्राप्ति की आशा गहरी होने लगती है। यह इन रास्तों की सचाई का प्रमाण है :

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

मैंने अपने नाती (२ वर्ष) नानू को उसकी रजाई में रेल का इंजन रखकर कह दिया, "इसे अपने पास सुला लो वरना यह देहरादून चला जाएगा।" वह 'छोजा, छोजा' कहकर इंजन को थपकी देता हुआ एक मिनट में सो गया क्योंकि वह नींद का आवाहन कर रहा था इस लिए नींद आ गई। मैंने इंजन उठाकर अलमारी में रख दिया। १० घंटे के बाद आंख खुलते ही नानू ने रोते हुए कहा, "पापा, देख लो इंजन देहरादून चला गया।" मैंने इस बच्चे पर बहुत अनुभव किए हैं। मेरा विश्वास है कि सोते समय की भावना हमारे भविष्य को बनाती और बिगाड़ती है।

जो दिन-रात दिवालिया होने का भय करते रहते हैं उनका मन दिवालिया होने वाले सुझाव ऊपर को फेंकता है, और वह मनुष्य अवश्य ही दिवालिया हो जाएगा यह निश्चय है। बीमारी के सुपनों वाले बीमार और सफलता को चित्रित करने वाले सफल हो जाते हैं, यह मनोविज्ञान का अकाट्य नियम है। जहां यह नियम टूटता है वहां समझ लो कि सच्ची समाधि नहीं लगी थी या मन के पुराने संस्कार इतने गहरे और विपरीत थे कि तुम्हारे मनन से वह नष्ट न हो सके। इसलिए दोनों काम साथ-साथ करने पड़ेंगे। एक ओर तो मन को बाल्य-काल के समय से तरह-तरह की इकट्ठी की हुई भ्रान्तियों से साफ-साफ करना पड़ेगा और दूसरी ओर गहरी और लम्बी संकल्प-क्रिया द्वारा मन में अपनी मनोकामना की मेंहदी रचानी पड़ेगी।

भाग्य-रचना

मनुष्य-चरित्र पर बचपन की सुनी हुई कहानियों का बहुत गहरा

प्रभाव पड़ता है। वास्तव में ये कहानियां ही हमारे मानसिक विकास, भाग्य, और चरित्र की आधारशिला हैं। क्योंकि इन कहानियों द्वारा बच्चा अपनी आकांक्षाओं का निर्माण करता है। इसलिए मेरा अनुरोध है कि भारत की भावी संतान को ऊटपटांग—चोर, उचक्कों, भूत-प्रेत, खूनी, डाकुओं की कहानियां सुनाकर हम उनके चरित्र को नष्ट न करें। और अपने भविष्य को उज्ज्वल करने के लिए भी सोते समय की अल्पावधि में निराशा की झलक न आने दें। यह याद रखने की बात है कि मन पर किसी प्रकार का भी बोझ डालना अन्याय है क्योंकि यह आपका वह सेवक है कि जो जीवन पर्यन्त आपकी निःशुल्क सेवा करता है और पल भर भी विश्राम नहीं करता। हिसाब लगाने से पता चला है कि लगभग ३३६० मन भारी पत्थर की चट्टान को १ फुट ऊंचा उठाने में जितनी शक्ति लगती है, आपका मन २४ घण्टों में उतनी ही शक्ति शरीर के रक्त प्रवाह में खर्च करता है। इस बिचारे पर तरस खाओ !

बापू का प्रायश्चित्त

बात तो बहुत छोटी-सी है पर जितनी पुरानी पड़ रही है उतनी ही बोझिल होती जाती है। कभी मेरी छाती में ही कुलबुलाकर न रह जाए, इसलिए आज मित्रों को भी 'शरीके-जिगर' किए लेता हूं।

स्वराज्य-प्राप्ति के कुछ ही महीने पहले मेरे भाग्य से एक बार गांधी जी कुछ लम्बे अरसे को विश्राम के हेतु देहरादून-मसूरी चले आए। उनका स्वास्थ्य कुछ गिर रहा था। मसूरी के बिड़ला-भवन में ठहरने की ठहरी। मैं उन दिनों उ० प्र० की विधान-सभा का सदस्य था। गांधी जी की सुनते ही मैं १५-२० स्वयंसेवकों की टुकड़ी लेकर मसूरी जा पहुंचा। बिड़ला-भवन के बिल्कुल नजदीक एक मकान में पड़ाव डाल दिया, किसी सस्ते-से होटल में खाने का प्रबन्ध हो गया। जो भी स्वयंसेवक वहां आ गया, अपने को धन्य समझता था।

मुझे शुरू से स्वयंसेवकों के बीच सोने-उठने का शौक था। उन दिनों सिगरेट लायक तो पैसे थे नहीं, बीड़ी पीकर ही काम चलाते थे। बस, दो ही नशे करते थे—एक बापू का और दूसरा बीड़ी का। पर कभी दोनों एक साथ न कर सके। बापू को देखते ही बीड़ी इस ढंग से बुझाते कि कहीं शुबहा न हो जाए। कभी बुझाने का मौका न लगा तो हाथ जेब में डालकर अन्दर ही अन्दर पोरुओं से आग मसलनी पड़ती थी। उनकी चोरी से पीते थे पर बुझाते समय की भावना और भक्ति इतनी अगाध और पवित्र होती थी कि जैसे दान-बलिदान

के समय होती है।

बापू सुबह-शाम टहलने जाते तो सुशीला नैयर, प्यारेलाल और ब्रजकृष्ण चांदीवाला आदि सब परिवार के रूप में उनके साथ-साथ जाते, और हम ? हम रास्ते में किसी ऐसी जगह खड़े हो जाते जहां हमपर उनकी नजर पड़ जाए तो दूर से प्रणाम कर लें। लालच रहता था कि शायद बुला भी लें। कभी-कभी बुला भी लेते थे। एक दिन बुलाया और मेरे कन्धे पर हाथ धरकर बहुत दूर चले। बस पांच मिनट ही हाथ रहा होगा कि एक लड़कीने पीछे से आकर मुझसे हाथ छीन लिया, और अपने कन्धे पर रख लिया। मैंने बापू की ओर अपील-भरी आंखों से देखा, पर वे ऐसे मुस्कराए कि जैसे कोई बात ही नहीं। मेरी दुनिया लुट गई और लड़की के हाथों। वे मुस्करा दिए। कितने कठोर थे बापू ! पर उन्हींकी हस्त-छाया में चल रहा हूं आज तक। मैंने उनसे धोखे किए, उनके जीते जी भी किए और उनके मरने पर भी कर रहा हूं, ऐसा अभागा हूं मैं महावीर त्यागी। पर उनकी हस्त-छाया वैसी ही बनी है, कैसे उदार थे बापू !

सायकाल को प्रार्थना होती थी। पहले हैपी वैली के मैदान में आरम्भ की, पर लोगों का तकाजा हुआ कि शहर के बीच मे होनी चाहिए। मैंने डरते-डरते आज्ञा चाही। उन्होने स्वीकार कर लिया। फिर सिल्वरटन होटल के मैदान में प्रार्थना होने लगी। बापू का ध्यान राम में और हमारा बापू में। गरज कि सारी जनता ध्यानावस्थित होकर अमृत-वचन पान करती थी। अभी तक वह छबि आंखों में और शब्द कानों में गूंज रहे हैं। भीड़ के चारों ओर मेरे साथी स्वयंसेवक गमलों के फूलों की तरह अपनी वर्दी पहने खड़े रहते थे। कितने सीधे और सच्चे थे वे गांव के स्वयंसेवक। बेचारे अन्ध-विश्वासी

ग्रौर श्रद्धालु, हर काम के लिए सैनिक की भांति तैयार। उन्होंने हमारा बहुत साथ दिया, पर मैं उनके किसी काम न ग्राया। कैसा निकम्मा नेता हूं मैं ?

एक दिन मेरे एक मित्र ने, जो मुझसे कुछ ईर्ष्या करते थे (क्योंकि मैं गांधीजी का मुंहलगा सेवक था ग्रौर वे ग्रपरिचित भगत), गांधीजी के कान भर दिए कि मेरे स्वयंसेवक मसूरी के कुलियों को प्रार्थना में ग्राने से रोकते हैं, क्योंकि उनके कपड़े गन्दे होते हैं। गांधीजी को यह सुनकर बड़ी चोट लगी। ग्राव देखा न ताव उन्होंने खटाक से ग्रपने प्रवचन में कह दिया—"स्वयंसेवकों ने कुलियों को प्रार्थना में ग्राने से रोक दिया, क्योंकि उनके कपड़े मैले हैं।" ग्रादि ग्रादि। मेरे स्वयंसेवकों को सब-कुछ कह डाला। वे बेचारे खड़े के खड़े रह गए, काटो तो खून नहीं। सूरजमुखी फूल की तरह सबका चेहरा निढाल। इधर मैं जल के राख हो गया। मुंहफट तो था ही, प्रार्थना खत्म होते ही गांधीजी को ऊंची-नीची सुनानी शुरू कर दी :

"राम के मन्दिर में बैठकर ग्रापने झूठ क्यों बोला ? ग्रगर पूछताछ करने से पता चला कि एक भी कुली को नहीं रोका गया तो ? मेरे स्वयंसेवकों का मुंह काला कर दिया। बेचारे बाजार में निकलने लायक भी नहीं रहे। ग्रापको उस खुले झूठ का यकीन कैसे ग्राया ? ग्रौर इस झूठे प्रवचन से लाभ क्या हुग्रा ? मेरी बरसों की कमाई पर पानी फेर दिया।"

मैं जितनी-जितनी बदतमीजी करता गया वे उतना ही हंसते गए। कितने निष्ठुर थे बापू !

बिड़ला-भवन पहुंचते ही बापू ने श्री व्रजकृष्ण चांदीवाला ग्रौर श्री प्यारेलाल को ग्राज्ञा दी कि वे कुलियों के विश्रामगृहों पर जा-

जाकर इसकी पड़ताल करें और कल की प्रार्थना से पहले रिपोर्ट दें यह कमीशन दिन-भर मसूरी घूमा, पर एक भी कुली ऐसा न मिल कि जिसे प्रार्थना में आने से रोका गया हो। उनका कहना था कि "इस प्रार्थना के कारण डांडी-रिक्शा की मांग इतनी बढ़ गई है कि हमारी फसल कट रही है। अपनी कमाई छोड़कर हम प्रार्थना में कैसे जाएं।" कमीशन ने सच्ची रिपोर्ट बापू को दे दी।

अभी मुझे इसकी भनक न पड़ी थी। मैं तो गांधी जी से रूठा हुआ था, अगले दिन भी रूठा रहा, कैसा अभागा हूं मैं (आज मुझे उस दिन की बात याद करके रोना आता है, क्योंकि अब बापू मुझसे रूठ गए हैं)। उस दिन प्रार्थना में भी मैं अनमना-सा दूर जाकर खड़ा हो गया। प्रार्थना समाप्त होते ही गांधी जी का प्रवचन आरम्भ हुआ। मुझपर बिजली गिर पड़ी। कल तो जिन्दा भी था आज काटो तो खून नहीं, लेने के देने पड़ गए। बापू ने कहा, "आज तो मैं प्रायश्चित्त करना चाहता हूं।" सारी जनता घबड़ा उठी कहीं बापू उपवास न कर बैठें। बापू बोले—"आज त्यागी जी तो मुझसे नराज हो गया, इसीलिए वह दूर जाकर खड़ा हो गया, वह मुझे केता कि तू झूंठा है, तूने राम के मन्दिर में बैठकर झूंठ क्यों बोला? (मैंने बापू को कभी 'तू' नहीं कहा था, मुझे डर हुआ कि मेरे जिले के सब लोग थू-थू करेंगे कि मैं गांधी जी को तू कहकर बुलाता हूं)। मुझे एक व्यक्ति ने आकर खबर दी कि कुलियों को प्रार्थना में आने से रोका जाता है, मैंने उसकी बात का भरोसा कर लिया और कल आपके सामने कह भी दिया। फिर तहकीकात से तो वह बात गलत निकली। तो फिर त्यागी जी ठीक केता है ना? मैंने तो राम के मन्दिर में बैठकर झूंठ बोल दिया। इसका तो मुझे प्रायश्चित्त करना

होगा। और मैं तो आखिर महात्मा ठहरा न? तुम सब तो महात्मा भी नहीं हो। जब मैं ऐसा पाप कर सकता, तब तुम सब भी जरूर ऐसा पाप करते होगे, भला? फिर तो सबको अपना पाप धोना है। आओ, और हम सब मिलकर प्रायश्चित्त करें। प्रायश्चित्त तो यही है ना कि भविष्य में पाप ना हो। तो फिर सब भाई-बेन अपनी आंख मींचकर राम का ध्यान करो, और प्रतिज्ञा करो कि जब किसीकी बुराई आंख में पड़े तो अपनी आंख बन्द करना, और कान में पड़े तो कान बन्द करना। और फिर भी अगर किसीकी बुराई तुम्हारे भीतर आ जाए तो फिर मुंह बन्द करना, भला। ऐसा करने से पाप से बच सकते। तो फिर, मैंने तो प्रण कर लिया, तुम भी करो। किसीकी बुराई और बदनामी की बात बिना छानबीन किए मुंह से नईं निकालना।"

प्रार्थना बन्द होते ही मैंने नजदीक जाकर बापू को प्रणाम किया तो बोले:

"अपने पापी को क्षमा कर दिया?"

मैं रो पड़ा। आज मैं बापू से पूछता हूं कि आपने अपने पापी का क्या किया? वह तो क्षमा के योग्य भी नहीं है। आगे क्या लिखूं? उन्होंने मेरे कन्धे पर हाथ धर दिया। अब तो रोता देखकर लोग कन्नी काटकर इधर-उधर खिसक जाते हैं। सबको अपने-अपने गम हैं, कोई फिर दूसरों के गम को अपने ऊपर क्यों ओढ़े?

"राजा जी०"

फैजाबाद जेल का किस्सा है कि एक दिन श्री केशवदेव मालवीय, जो आजकल केन्द्रीय सरकार में मंत्री हैं, बहुत परेशान और फीका-सा मुंह लिए हमारी बैरक में आए। हम बाहर के चक्कर में, फाटक के नजदीक वाली बैरक मे रहते थे। हम ने 'बी' क्लास का दर्जा स्वयं त्याग दिया था, इसलिए अन्दर के चक्कर (चारदीवारी) मे जो राजनैतिक कैदी रहते थे हमें उनसे अलग बाहर के चक्कर में ला रक्खा था। हमारी बैरक वालों को ३०० गज मूंज के बान बंटने की 'मशक्कत' दी गई थी। २ या ३ फिट बान बंट दिया करते थे ताकि यदि सज़ा भी मिले तो काम कम करने की मिले, जेल-कानून भग करने की ना मिले। बाकी समय पढ़ने-लिखने में लगाते थे। दोपहर का वक्त था और जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब कैदियों की परेड देखने को अपने दफ्तर से निकल चुके थे। सामने दो सिपाही खुली सगीन लिए, और पीछे एक कैदी छतर लिए, और दूसरा चंवर, तीसरा पंखा डोलाता चलता था। उनके साथ कई बन्दूकची सिपाही, जेलर, जेल-डाक्टर और बहुत-से कर्मचारी जुलूस बनाकर दूल्हे की चाल चलते थे। जिस समय केशव जी हमारी बैरक मे आए, सुपरिण्टेण्डेण्ट भंडारे (किचन) का निरीक्षण कर रहे थे। वहां से हमारी बैरक में ही आने का नम्बर था। कायदा यह था कि बैरक में के दरवाजे पर आते ही एक सीटी बजाई जाती थी कि जिस-

शिष्टाचार नहीं जानते कि बिना बुलाए दूसरे आदमियों की बात में दखल देते हो, चुप रहो और अपना काम देखो।" केशव चुप हो गए, मेरी तरह से मुंहफट होते तो फौरन उधार उतार देते। यह बेचारे तो एम०एस०सी० थे न? (एम०—मुंह, एस०—सिकोड़, सी०—चले)। आए हमारे पास, "बदला लिवा दो।" जुबेरी को बहुत गुस्सा लगा। उन्होंने केशव जी को तो वापिस भेज दिया और बोले, "हम लिवाएंगे बदला तुम्हारा।" फिर खड़े होकर ज़ोर से तमाम बैरक वालों को ललकार दिया कि "सब लोग अपना-अपना लोहे का तसला उठाकर बैरक से बाहर चले आओ, मालवीय जी का बदला लेना है, और जैसा-जैसा मैं कहूं या करूं तुम सब लोग भी वैसा ही कहना-करना।" हम लोगों में केवल एक ही बात पर झगड़ा हुआ करता था। वह यह कि किसको लीडर माना जाए।

सब ही लीडरी का दम भरते। मैंने यह फैसला दे रखा था कि हर अवसर पर जो पहिले खड़ा होकर पथ प्रदर्शन कर दे उसीको तात्कालिक लीडर मान लिया जाए, फिर चाहे वह रास्ता गलत बताए या सही। और जेल को झूठ-सच, पाप-पुण्य, और उचित-अनुचित के धन्धों से परे घोषित कर दिया था। हम इस बैरक में करीब १५ थे, सब बैरक से बाहर निकल आए। सुपरिण्टेण्डेण्ट का जुलूस बैरक के सामने आया, उन्होंने हमें बाहर खड़ा पाया। एक आंख से देखा और दूसरी से अनदेखा करके अकड़े हुए-से सैनिक डग भरते हुए बैरक में चले गए। और उनके साथ उनके सिपाही-प्यादे भी अन्दर घुस गए। दोनों तरफ गर्दन घुमाते हुए उसी शान से चले जैसे कि कैदियों का निरीक्षण कर रहे हों, पर जा रहे थे खाली कब्रिस्तान में। हम सब तो नियाज अहमद के भूत बने बाहर खड़े थे, बूढ़े और बड़े कब्रिस्तान

में सब बराबर माने जाते हैं। जब आखिरी सिपाही बैरक में घुस गया तो जुबैरी साहब ने अपने तसले पर तबले की टेक लगाकर जोर से गाना शुरू किया, "राजा जो व न ब र स न लागे, राजा जो०।" और अन्तिम "जो०" पर जोर से दाहिना पैर भी पीट दिया। फिर हम सबने बिल्कुल इसी तरह गाना गाकर तसले और तलवों की ताल लगा दी। इस बीच में सुपरिण्टेण्डेण्ट ने अपना मुंह हमारी ओर को मोड़ लिया और हमने देखा कि उसके चेहरे की हवाइयां उड़ गई थी। केशव जी लाल मुद्रा लेकर लौटे थे, साहिब बहादुर का रंग सफेद पड़ गया। जैसे ही उन्होंने हमारी तरफ को मुंह किया, जुबैरी ने जल्दी-जल्दी बसन्त की तान लगानी और बजानी शुरू कर दी और साथ ही साहिब की आंखों में आंखें डालकर गर्दन भी हिलानी शुरू कर दी। बचपन के मजे जवानी में आ गए। जुबैरी के चुप होते ही हम १५, १६ आदमियों ने उसी तेजी के साथ अपनी गर्दन हिला-हिलाकर "राजा जोबन बरसन लागे, राजा जो०" कहना शुरू कर दिया और तसलों की तेज बसन्त गत बजा दी। हममें से कइयों के लम्बी डाढ़ी भी थी, पर हम ऐसे नाचे कि मानो बिना लंगोटी के तीन वर्ष के बच्चे नाच रहे हों। हमें ऐसा लग रहा था कि मानो इस मूर्खता के द्वारा स्वराज्य-सुख भोग रहे हैं। अब मिनिस्ट्री की कुर्सी से यह सब अशिष्टता और बदतमीजी की बात दिखाई देती है। कुछ भी हो, मजा आ गया। हमने "राजा जो०" कहकर तान तोड़ी ही थी कि साहिब बहादुर ने तड़ककर पूछा, "यह क्या तमाशा है?" जुबैरी ने जवाब दिया, "आपको मैनर्स नहीं आते, हम आपस में गा रहे हैं, बिना हमारी आज्ञा लिए आप हमारे बीच में क्यों आते हैं?" और फिर गर्दन हिलाकर गाना शुरू कर दिया, "राजा जोबन बरसन लागे, राजा जो०"। साहिब

बहादुर ने हुक्म दिया कि नियाज़ और मैं पेशी पर हाज़िर किए जाएं। कैदी तो थे ही, फिर अभियुक्त बनकर साहिब की पेशी पर भेज दिए गए। हमको पेशी का हुक्म देकर साहिब बहादुर 'बी' क्लास वालों की परेड देखने चले गए, हम लोगों ने गांधी जी की जय और इन्कलाब ज़िन्दाबाद के नारे लगाने शुरू कर दिए। चक्कर में जो १५ के लगभग राजनैतिक कैदी थे उन्हें फिक्र पड़ी कि क्या हुआ। कुछ कैदी नम्बरदारों ने जो कि अन्दर-बाहर आ-जा सकते थे, हमारे साथियों को बता दिया कि "त्यागी जी वाली बैरक ने साहिब बहादुर को "राजा जो०" चिल्ला दिया और जुर्रैरी साहिब और त्यागी को पेशी का हुक्म हुआ।" वे बेचारे "राजा जो०" का तो कोई अर्थ न समझ सके पर नियमानुसार उन्होंने भी साहिब बहादुर के चक्कर में घुसते ही "राजा जो०" के नारे लगा दिए। जिस बैरक में जावें, "राजा जो० " आखिर तंग आकर दफ्तर में लौट आए। हमें पेशी पर बुला ही रक्खा था, उन्होंने पूछा कि "आप लोगों को क्यों न सज़ा दी जाए, आपने जेल का अनुशासन भंग किया है और आपकी देखा-देखी सारी जेल ने किया है।" हमने उत्तर दिया कि यह तो आपके स्वागत का नारा है, आपको 'राजा' की पदवी दे दी और क्या सम्मान चाहते हैं। आप यहां पर सर्वप्रिय हैं इसका परिचय देने के लिए "राजा जो०" के नारे लगे हैं। "अच्छा, ऐसा है तो अब बन्द करा दीजिए।" नियाज़ अहमद ने कहा, "यह काम तो श्री केशव देव मालवीय ही करा सकते हैं, क्योंकि आज हम सब उन्हीं के कहने में हैं।" साहिब रहस्य को समझ गए और उन्होंने श्री मालवीय जी को बुलाकर अपने व्यवहार पर शोक प्रकट कर दिया। मालवीय जी ने हर बैरक में जाकर आज्ञा दे दी कि "राजा जो०" का आन्दोलन वापिस

ले लिया जाए। सुपरिण्टेण्डेण्ट फिर से परेड को निकले और शान्ति-पूर्वक दफ्तर लौट आए। हमको भी सजा न मिली वल्कि उस दिन से जेल के जमादारों की तलाशी होनी कम हो गई और बीड़ी के बंडल का भाव, जो टाटा के शेयर की तरह रोज नया खुलता था, उस दिन ६ आने से फिर ६ पैसे पर आ गया और खुले आम बीड़ी पीनी आरम्भ हो गई।

सामूहिक व्यक्ति

आजकल कांग्रेस का संगठन मजबूत करने की बहुत चर्चा है। नेतागण बड़ी आसानी से कह देते हैं कि आपस में मेल बनाकर रचनात्मक कार्य में जुट जाओ। मेरी राय में यह सब व्यर्थ की बात है। भला प्रस्तावों द्वारा आज तक कभी भी आपस में मेल हुआ है? क्या मेल और मैत्री पर मनुष्य का ऐसा अधिकार है कि जैसे उसको अपनी जबान या कलम पर है कि मन चाहा बक दिया, चाहे जब लिख दिया और काट दिया? मैं बहुत पढ़ा-लिखा नहीं हूं, पर मेरा अनुभव मुझे कहता है कि मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से अपने चलन पर पूरा अधिकार प्राप्त नहीं है। हजारों व्यक्तियों को किसी एक मार्ग पर चलाने के लिए विशेष प्रकार का वातावरण बनाने की आवश्यकता होगी। सहयोग जन-समूह का स्वाभाविक लक्षण है, इसलिए कांग्रेसजनों में मेल और सहयोग की भावना जाग्रत् करने के लिए हमें केवल उपयुक्त वातावरण बनाने का प्रयत्न करना पड़ेगा। उस वातावरण के अन्तर्गत हममें स्वभावतः मेल हो जाएगा।

यह भी समझ लीजिए कि मनोविज्ञान के अनुसार यह ख्याल बिल्कुल गलत है कि व्यक्तिगत रूप से हम लोग जान-बूझकर झगड़ा या मेल करते हैं। यदि आप पूरी छानबीन करें तो यह सिद्ध हो सकता है कि आपमें से कोई भी अपने विचारों का स्वतंत्र नहीं है। जो लोग अपने को स्वतंत्र मानते हैं, उन्हें भी आन्तरिक दिग्दर्शन करने पर यह

व्यवहार में हमें मजा आता है, इसलिए हमको भ्रान्ति हो जाती
कि हम जान-बूझकर अटपटी बातें कर रहे हैं। इसलिए आप म
कि व्यक्तिगत जीवन सामूहिक जीवन से पृथक् है। सामूहिक जीव
में व्यक्तिगत जीवन का समावेश तो है, परन्तु उसका हिसाब जम
खर्च के अनुपात से नहीं बनता। उसमें व्यक्तियों का समावेश तो
पर ऐसा मत समझो कि 'सामूहिक व्यक्ति' में सब अच्छे-बुरे, प
बेपढ़े, नेक और बद आदमियों का सत जोड़कर औसत निकल आ
है। जमा-खर्च के हिसाब से जो औसत निकलेगी उससे कहीं अधिक
की छटाएं 'सामूहिक व्यक्ति' में मिलेंगी। यह 'व्यक्ति' भाव
प्रधान, उदारता की पराकाष्ठा, महावीर, त्यागी, दयालु और साथ
पैशाचिक वृत्तियों वाला होता है। दलीलों से इतनी दूर कि वकील
इसके प्रभाव में आकर भावात्मक हो जाते हैं। श्रद्धा और विश्व
इस व्यक्ति की जान हैं। और भय और आशा के सांस भरता हुआ
व्यक्ति हम सबों पर अपना जादू किए रहता है। वैसे इस 'व्य
का स्वभाव बालकों जैसा, खेलकूद, हंसी-ठट्ठा और दिल्लगी वाला हो
है। जितना ही यह व्यक्ति हमपर अपना आधिपत्य जमाए रहता
उतना ही यह हमारे इशारों पर चलता है। पर केवल उन इश
पर कि जो मौके पर दिए जाएं और इशारा करने वाला व्यक्ति स
साधारण से जरा ऊंचा हो। 'सामूहिक व्यक्ति' का शासन ि
'कोड' के अनुसार होता है उसकी धाराओं का उल्लंघन सिवाय पा
के दूसरा नहीं कर सकता। हम कैसे कपड़े पहने, माई-बहिन
सम्बन्ध कैसा हो, दोनों पैरों में एक-से जूते हों, और बाजार में
न घूमें, इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों पर भी 'सामूहिक व्य
का आधिपत्य है। यह सब वातावरण का खेल है। जैसी भावन

होगी वैसा ही व्यक्तियों का चलन होगा।

आजकल भारत का वातावरण राजनीति-प्रधान है। एक ज़माना था जब धार्मिक मेले, कथाओं और धर्म की चर्चाओं का ज़ोर था। इन दिनों इस दिशा में लोगों की दिलचस्पी फीकी पड़ गई है। कभी साइंस और कभी साहित्य की ही चर्चा ज़ोर पकड़ जाती है। त्याग के दिन आते हैं तो कभी भोग की प्रवृत्ति हो जाती है।

हमारे ज़माने में गांधी जी ने एक अजीब युग त्याग और तपस्या का उत्पन्न कर दिया था कि जिसके अन्तर्गत लाखों आदमी अपनी जान और माल को खतरे में डालकर देश-सेवा के कार्य को महत्त्व देते थे, जेलखाने जाते थे और पुलिस की लाठी-डंडे खाने में गौरव समझते थे। पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त और श्री जवाहरलाल नेहरू को लखनऊ की पुलिस के घुड़सवारों ने साइमन कमीशन के बायकाट के समय इतने डंडे मारे कि उम्र-भर याद रक्खेंगे। श्री जवाहरलाल की कमर के नील और दाफड़ के निशानों के फोटो अखबारों में छपे थे। उन दिनों यही रिवाज था। सन् १९२१ में मुझे भी भरी अदालत में थप्पड़ों से पिटवाया गया था। पर अब यह रिवाज बन्द हो गया है। उन दिनों थप्पड़ों में भी मान था।

इसलिए मेरी धारणा है कि हमको कोई तरीका निकालना चाहिए कि जिससे वातावरण ऐसा बन जाए कि कांग्रेस पार्टी की आन्तरिक फूट दूर हो जाए और आपस में मिलकर देश-सेवा करने का फैशन बन जाए। आज जो मतभेद नज़र आते हैं उनका असली कारण क्या है? पुराने ज़माने में हम सब जो मिलकर आन्दोलन करते थे या रचनात्मक कार्य करते थे तो उन कामों में किसीकी भी स्वार्थ-भावना नहीं थी, सब काम सामूहिक था, स्वराज्य-

प्राप्ति के लिए। जैसे छप्पर उठाते समय जो भी हाथ लगा दे, सब लोग मिलकर उसका आदर और स्वागत करते हैं, कोई भी ईर्ष्या नहीं करता। जब तक गांधी जी जिन्दा थे, वे हमारे सामने कोई न कोई ऐसा कार्य रख देते थे कि जो सार्वजनिक हित का हो। जब-जब हम सार्वजनिक हित का कार्य करेंगे, हममें निश्चय ही आपसी मेल, मोहब्बत और सहयोग की भावना बढ़ेगी, क्योंकि वातावरण ही इस प्रकार का होगा। हमारी आपस की फूट का मूल कारण है सार्वजनिक आन्दोलन की कमी। आजकल जो व्यक्ति परोपकार का कार्य करते हैं उनके अलग-अलग कार्य-क्षेत्र बन जाते हैं और एक के क्षेत्र में दूसरे के प्रभाव पड़ जाने से कार्य में बाधा पड़ती है। इसलिए सार्वजनिक कार्य करने वालों में भी अपने-अपने क्षेत्र के लिए मोह उत्पन्न हो जाता है और यही झगड़े का कारण है। हमको यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि स्वराज्य होने के बाद कांग्रेस के नेतागण और हम सब मिलकर इस बात में असफल हो गए हैं कि हम कांग्रेस कार्यकर्ताओं के लिए कोई ठोस कार्य १-२-३ करके बता सकें। केवल यह उपदेश देना कि "रचनात्मक कार्य करो," इससे काम नहीं चलेगा। कोई ऐसा काम निकालो कि जिसमें हम सब लोग जुट सकें तो फिर उपदेश और प्रस्तावों के बिना ही दलबन्दी बन्द हो जाएगी।

सिंहावलोकन

किसी अथक और अलौकिक रागिनी के चढ़ते हुए स्वरों पर मन्त्रमुग्ध होकर नाचने वाले हम कांग्रेसी मतवाले, जिन्होंने लगभग ३० वर्षों से निरन्तर अपने हृदयों की धड़कन इस महानृत्य की थिरक ताल से बांध रखी थी, और जो अपनी और अपने बाल-बच्चों की सुधि बिसराए दिन-रात उसी अनन्त राग में निमग्न थे, जो तमाम सांसारिक शक्तियों की अवहेलना करते हुए इठलाती-ठुकराती चाल से राग-विलास बने इतराते फिरते थे, आज वीणा के टूटे-ढीले तारों की तरह उखड़े-उलझे-से पड़े हैं।

यह क्या हुआ ? स्वर टूट गया। अभी सिर में घूम रहे हैं वे स्वर, पर हम उन्हें पकड़ नहीं पाते। उतरी हुई मृदंग की तरह झोझरे बने अधमरे-से पड़े हैं। अब न वह पहली-सी मस्ती है और न वह नशा, खाली खुमार बाकी है। जैसे दीपशिखा के बुझते ही पतंगों की महफ़िल बिखर जाए, या सूर्य के लोप होने से सारे ग्रह अपनी चाल भूल, नष्ट-भ्रष्ट हो जाएं, या चुम्बक-शक्ति न रहने से पृथ्वी का कण-कण उससे छूटकर हवा में उड़ जाए, ठीक इसी भांति हमारी महफ़िलें बहकी पड़ी हैं। जैसे बिना स्वर के राग, वैसे ही बिना बापू के कांग्रेस।

आशा थी कि जवाहरलाल नेहरू को वे स्वर याद हों, शायद वे फिर से उस सोए हुए राग को जगा दें। बोल तो याद हैं उन्हें भी, हमें

भी, पर अलाप भूल गए, या यों कहिए कि वह राग ही रूठ गया। जवाहरलाल की गुलाबी तबियत मचलती भी है तो प्यानो पर। भला वीणा-बांसुरी के स्वर प्यानो पर उतरें तो कैसे उतरें ? उच्च वर्ग के स्वर और नीच वर्ण की सवारी । और फिर हमारी राग-रागिनी तो वर्ण-व्यवस्था की अनुयायी ठहरी, वह अनमेल विवाह को क्या जाने।

पिछले चालीस वर्षों में हमने क्या-क्या किया, यह भी पूरी तरह याद नहीं। याद कैसे हो ? कुछ जान-बूझकर थोड़े ही किया ? किसी नशे की मस्ती में किया था। और फिर ऐसे रत होकर किया था कि 'कर्ता-कर्म' का विवेक ही नहीं हो सकता। अब वे काम याद कैसे आएं। हां, सिंहावलोकन से यह याद पड़ता है कि अपनी बुद्धि तथा शक्ति से बाहर के काम किए और उन कामों को कठिनाइयों के बावजूद हंसते-खेलते कर डाला। हमारे अधिकांश कांग्रेसी साथियों को सन्तोष है कि उनके परिश्रम सफल हुए। भारत की स्वाधीनता पर उन्हें गौरव है। हमें यह सन्तोष भी नसीब नहीं हुआ, क्योंकि हमने जो कुछ भी किया,वह स्वराज्य के निमित्त नहीं, अपितु अपने तात्कालिक आनन्द के लिए, तुलसी के शब्दों में, 'स्वान्तः सुखाय' किया। हम तो अपने कामों का मूल्य हाथ के हाथ पग-पग पर चुकाते गए। लिप्त होकर कार्य करने का सारा मूल्य लिप्त होने में है, फिर चाहे कार्य सफल हो अथवा असफल, कुत्ता कोई इसलिए थोड़े ही भौंकता है कि उसके भौंकने से चोर भाग जाएगा। चोर भागे या न भागे, वह तो इसलिए भौंकता है कि उसे इस भौंकने में मालिक की वफ़ादारी का वही मज़ा आता है जो कि काम में लिप्त रहने में है। हमारा भी कुत्ते जैसा ही हिसाब रहा।

जितनी देर कार्य किया, उतनी देर मजा लूट कर दाम चुका लिए। हम अपने स्वराज-सुख को किश्तों में वसूल करते रहे, इसलिए स्वराज मिलते समय हम रीते हाथ अपने 'रैन बसेरे' में जा बैठे। हमारा मन दुनिया वालों की तरह अधिक प्रफुल्लित न हुआ। आया होगा जिनके लिए यह स्वराज······

जगमगाती दीवाली बनकर आया,
हमारा तो दीवाला निकल गया।

सच बात तो यह है कि स्वराज के होने से हम अधिकांश कांग्रेस-वाले बेरोजगार और निठल्ले हो गए। अब आनन्द रूपी मजदूरी मिलती नहीं। कोई सखी का बन्दा मदद लगावे तो हम भी काम में लग जावें। जिस मालिक ने हमें पाला था वह मर गया, उसीकी चुटकी पर कान खड़े करते और उसीकी सीटी पर कूदते-फांदते और शिकार करते थे, उसीकी मुस्कराहट पर लट्टू बने घूमते थे। अब हमारे गले का पट्टा निकल गया और लावारिस बने इधर-उधर पूंछ हिलाते फिर रहे हैं। अब कोई चुटकी बजाता नहीं और न कोई सुसकारता है।

गिन-गिनकर हर नेता का दरवाजा खटखटा चुके कि कोई मदद लगावे तो हम भी काम में लग जावें, पर नेताओं के पास पद और उपाधि तो बहुत हैं, वजीफे, ओहदे, परमिट और लाइसेंस आदि भी बहुत हैं, चाय के प्याले भी हैं, पर काम नहीं है।

जब अंग्रेज था, हमें आए दिन कुछ न कुछ काम मिल जाता था। और कुछ न हुआ तो प्रभात-फेरी ही निकाल ली। कहीं दस आदमी दीखे, उन्हें अखबार की खबरें ही पढ़ सुनाईं। लोग दूर से देखते तो आवभगत करते, पान-सिगरेट की बातें करते, अपने पास बिठाते और

कहते, "क्यों जी, गांधी महात्मा आजकल कहां हैं ? वे क्या कर रहे हैं ? आपको तो वे खूब पहचानते होंगे।" हम खूब बढ़-चढ़कर बात करते और गांधी जी की बात बताते-बताते थकते नहीं। लेक्चर भी हम इसलिए थोड़े ही देते थे कि हम जनसाधारण से कुछ अधिक जानते थे, बल्कि इसलिए कि हमें इसमें भी वही मजा आता था जोकि कुत्ते को भौंकने में और शोर मचाने में आता है। पर अब तो वे सारी बातें स्वप्न हो गईं। अब हमें सचमुच अंग्रेजों की याद आने लगी। वह हमसे लड़ता था, लाठी चार्ज करता था, हथकड़ी डालता था और जेल भेजता था। पर जब जेल से छूटकर आते तो बड़े शौक से हाथ मिला लेता था। उसके रहते-रहते हमने २६ वर्ष पूर्ण स्वराज और स्वच्छन्दता का मजा लूटा। उसके चले जाने से जैसे बैरे-खानसामे बेरोजगार हो गए, वैसे ही कांग्रेस कार्यकर्ता भी बेकार हो गए। उन दिनों केवल अंग्रेज ही हम कार्यकर्ताओं का रोब न मानता था, बल्कि उसके रहते-रहते कांग्रेसी नेता भी हमारी कद्र करते थे। अब नेतागण हमसे दूर और सरकारी अफसरों के नजदीक हो गए।

नेताओं से बातचीत करने की तो बात ही क्या, अब तो उनके दर्शन भी बिना अफसरों की आज्ञा के नहीं हो सकते। हमने भी अपने ज़माने में वालंटियर बनकर बहुत-से लोगों को नेतागण के दर्शनों से रोका था। उन्ही पिछले कर्मों का फल आज भोग रहे हैं। खैर, *अब तो हमारी गिनती 'गैर जिम्मेदार' और 'भ्रष्टाचारियों' में है।* जिसे प्राइवेट सेक्रेटरी कह दें ठीक, वही 'ठीक' है।

पुलिस वाला भी दिन में कुछ घंटों के लिए वर्दी-पेटी उतारकर अपने भाई-बन्धुओं में हुक्का जा पीता है, पर हमारे नेतागण मिनिस्टरी के दलदल में ऐसे फंस गए हैं कि उन बेचारों को सचमुच दम

मारने तक का अवकाश नहीं है। उनकी दयनीय दशा को देख हमें भी उनसे दो मिनट लेते हुए अपने पर ऐसी ग्लानि होती है कि जैसे किसी थके-मांदे मुसाफिर को सोते से जगाने में···हम उनके पास नहीं जाते।

कांग्रेस के सारे के सारे नेता मिनिस्टर हो गए। या तो बड़े-बड़े नेता सब ही मिनिस्ट्री से बाहर रहते या कम से कम आधे तो जनता के बीच में रहते। अब तो हम जैसे छुटभैये भी या तो वजीर या एम० एल०ए० या एम०सी०ए० बने हुए हैं। जनता को हमने उसके हाल पर छोड़ दिया। अध्यापक पाठशाला को छोड़ आया तो जिसके मन में आया वही अध्यापक बनकर जनता को उल्टा-सीधा पाठ पढ़ाने लगा। इस तरह से जनता पर हमारा प्रभाव हट रहा है और हमारे विरोधी दलों का बढ़ रहा है। जनता तो हमींको चाहती है, पर हमारे हाथ खाली नहीं हैं। हम सरकारी कामों में जुटे हुए हैं। तो जनता का काम कौन करे।

कांग्रेस का शासन तो लोगों के मनों पर था और उसका अस्त्र था प्रेम और आशा। अब शासन शरीरों पर है और अस्त्र है वही हथकड़ी, बेड़ी, लाठी और आर्डिनेन्स, अर्थात् भय और निराशा। कानून की दीवारों का काला किला बनाकर हम सब कांग्रेस वाले उसकी चहारदीवारी के भीतर आ बैठे हैं। पहले हमारा मुंह था उधर ही जिधर जनता का था। आगे हम और पीछे-पीछे थी जनता। अब आमने-सामने खड़े हैं हम किले में, वह बाहर। हमारी लगाई हुई खेती और फुलवारी तो किले से बाहर रह गई। अपने त्याग-तपस्या की पुरानी कमाई की गठरी जो हमारे पास है, उसीसे किले वालों की रसद चल रही है, पर बापू की यह कमाई तो खत्म हो रही है। बेटे

को खुद भी तो कुछ कमाई करनी चाहिए वरना जब खाने को न रहेगा तो किला छोड़ना पड़ेगा । अपनी खेती की देख-भाल के लिए भी कुछ करना है या नहीं । सरकारी रोबकारों और आज्ञापत्रों द्वारा जनता की सेवा नहीं हो सकती । गैर सरकारी एजेन्सी की अवहेलना न कर उसे काम में लगाओ, वरना तलवों के नीचे से जमीन तेजी के साथ खिसक रही है ।

मुद्रक : पुरी प्रिंटर्स, करौल बाग.

अबतक प्रकाशित हिन्द पॉकेट बुक्स

उपन्यास

खून की हर बूंद	एक गधे की आत्मकथा
कुलटा	चन्द्रनाथ
रीता	देवदास
मिलन	बिराज बहू
ममता	पंडितजी
वनवासी	शेष प्रश्न
मूल	चरित्रहीन
मोती	वापिसी
आभा	देवी चौधरानी
धर्मपुत्र	अधूरा सपना
हृदय की परख	जाल
त्यागपत्र	दुर्गेशनन्दिनी
बीते दिन	विषवृक्ष
बड़ी-बड़ी आँखें	आनन्द मठ
वर्फ का दर्द	शहीद
ग़द्दार	निधी

ऊंचे पर्वत
पेरिस का कुबड़ा
स्वयंवर
आस-निरास
कलाकार का प्रेम
एक स्वप्न, एक सत्य
एक लड़की, दो रूप
प्रेम या वासना
रात और प्रभात
एक मामूली लड़की
प्यार की जिन्दगी
एक अनजान औरत का खत
पहला प्यार
गृहदाह
श्रीकान्त
हरकारा
अंधेरा उजाला
पाखंडी
मुक्ता
संकल्प
छोटी-सी बात
दायरे
मृगतृष्णा

अशू
नीना
डाक्टर देव
एक सवाल
ज्वालामुखी
डूबते मस्तूल
धरती की आंखें
गीता
उन्माद
सागर और मनुष्य
इंसान या शैतान
हम सब गुनहगार
बेबसी
अधिकार
कुमुदिनी
दो बहनें
जुदाई की शाम
बहूरानी
गोरा
आंख की किरकिरी
प्यार की पुकार
ज्वारभाटा
संघर्ष

शिकारी	प्रेमिका
कलंक	गजरा
छलना	क्रांतिकारी
जुआरी	

कहानी

काबुलीवाला	घोंसला
पतिता	अकेली
रहस्य की कहानी	एक पुरुष : एक नारी
बंगला की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	कसक
उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	घूंघट में गोरी जले
संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	कांच के टुकड़े
मंझली दीदी : बड़ी दीदी	धुएं की लकीर
बिन बुलाए मेहमान	

काव्य : शायरी

चीन को चुनौती	मेरे गीत तुम्हारे हैं
दीवान-ए-ग़ालिब	हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत
गीतांजलि	दर्द-ए-दिल
मधुशाला	मेरे गीत तुम्हारे हैं
	लहराते आंचल
जिगर की शायरी	गाता जाए बंजारा
उमर खैयाम की रुबाइयां	आज की उर्दू शायरी
मेघदूत	उर्दू रुबाइयां

नाटक

शकुन्तला	शादी या ढकोसला
रोमियो जूलियट	बेबात की बात
वेनिस का सौदागर	दरवाजे खोल दो

जीवनोपयोगी

वे सफल कैसे हुए	सुख और सफलता के साधन
सफलता के ८ साधन	जैसा चाहो वैसा बनो
सफल कैसे हों	प्रभावशाली व्यक्तित्व

विविध

बर्थ-कंट्रोल	स्त्री-पुरुष
आपका शरीर	योगासन और स्वास्थ्य
ठीक खाओ स्वस्थ रहो	डाक्टर के आने से पहले
पत्र लिखने की कला	अमरवाणी
गांधीजी की सूक्तियां	पंचतन्त्र
नरम गरम	सरल प्राकृतिक चिकित्सा
हस्तरेखाएं	हास-परिहास
प्रेम-पत्र	पकाइए खाइए

प्रत्येक का मूल्य एक रुपया

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं व रेलवे-स्टाल से मिलती हैं। अगर कोई कठिनाई हो तो सीधे हमसे मंगाएं।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा दिल्ली-३२

हिन्द पॉकेट बुक्स

भारत की सर्वप्रथम
पॉकेट बुक्स